द्वितीय अध्याय

श्री गंगाप्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्याय

श्री गंगाप्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना :

१.१ जीवन परिचय

(१.) जन्म

(२.) माता-पिता

(३.) शिक्षा-दीक्षा

(४.) परिवार

(५.) जीवन संघर्ष

१.२ अभिरुचि एवं व्यक्तित्व विश्लेषण

१.३ साहित्य रचना के विविध आयाम

(१.) उपन्यास साहित्य

(१.) विराग (१९४१)

(२.) संघर्षों के बीच (१९४४)

(३.) महिमा (१९४५)

(४.) तस्वीरें और साये (१९६४)

(५.) सोनारवाणी के पार (१९६८)

(६.) जहर चाँद का (१९७६)

(७.) मुस्कान है कहाँ (१९८२)

(८.) रांग साइड (१९९२)

(२.) कहानी साहित्य

(१.) सरोद की गत (१९४१)

(२.) आदर्श और यथार्थ (१९४४)

(३.) नया खून

(४.) नई राहें (१९४४)

(५.) काँटो का ताज (१९५०)

(६.) बाँहों के घेरे गर्दन की मजबूरियाँ (१९६२)

(७.) दूधपूत

(८.)मेरी प्रिय कहानियाँ

(३.) बाल साहित्य

(४.) रेडियो नाट्य साहित्य

(५.) यात्रा साहित्य

(६.) समीक्षा

(७.) लेख

१.४ साहित्य सृजन के प्रेरणा स्रोत

१.५ स्वर्गवास

१.६ आधार ग्रन्थ

१.७ सन्दर्भ

द्वितीय अध्याय

गंगाप्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना :

श्री गंगाप्रसाद मिश्र के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व से पहले उनके जीवन परिचय एवं व्यक्तित्व के पहलुओं की चर्चा अपरिहार्य है।

श्री गंगाप्रसाद मिश्र, प्रेमचंदोत्तर युग के सशक्त कथाकार थे। यो तो हिंदी के सभी बड़े कथाकार अपनी किसी न किसी विशिष्टता के कारण अपना अलग व्यक्तित्व रखते है, लेकिन मिश्रजी को हम उनकी कई विशेषताओं के कारण विशिष्ट एवं उल्लेखनीय मानते है। प्रेमचन्द, निराला, यशपाल, नागरजी, भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क और फणीश्वरनाथ रेणु सभी बड़े कथाकार हैं। उनकी रचना भूमि व्यापक और संपन्न है किन्तु; मिश्रजी से हिंदी जगत का पाठक उनसे, प्रेमचन्द की परम्परा की उनकी किस्सागोई की विशेष शैली के कारण अन्यतम रूप से जुड़ा रहा है।

१.१ जीवन परिचय

(१.) जन्म :

बीसवीं सदी के चौथे दशक से हिन्दी के कथा साहित्य में अपनी जोरदार उपस्थिति से हिंदी पाठकों का ध्यान खींचने वाले तथा नवें दशक तक कहानी, उपन्यास, रेडियो, रूपक, समीक्षा, फीचर, संस्मरण, यात्रावृत्त आदि अनेक विधाओं में अपनी रचनाओं से समाज की वास्तविकता को उजागर करने वाले श्री गंगाप्रसाद मिश्र का जन्म २८ जनवरी सन् १९१७ ईस्वी को खण्डवा (मध्यप्रदेश) में हुआ था। श्री गंगाप्रसाद मिश्र के पूर्वज मूलतः उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध और ऐतिहासिक नगर कन्नौज में ग्वाल-मैदान मुहल्ले के निवासी थे। कन्नौज को 'इत्रनगरी' कहा जाता है। यहाँ इत्र का उत्पादन होता है और वह देश-विदेश दोनों में प्रसिद्ध है। यह नगर गंगा नदी के किनारे बसा हुआ है। इस नगर का पौराणिक और ऐतिहासिक वृत्तांत भी अत्यंत रोचक है। कन्नौज की भूमि ज्ञान और शौर्य दोनों के लिए उर्वरा है। यहाँ के कवि इतिहास बनाते हैं; तो यहाँ लोग बड़े ही रणबांकुरे होते हैं जैसे- "वीर योद्धाओं का गाँव 'दुर्जनपुर' है, जिसमें रहने वाले लोगों की अजेयता शत्रुओं के लिए दुर्जनता का पर्याय बन जाती थी। यह गाँव कानपुर-कन्नौज सड़क

पर 'मानीमऊ' स्टेशन से एक मील उत्तर-पूर्व गंगा नदी के किनारे अवस्थित है। इसी गाँव में मिश्र जी के पूर्वज निवास करते थे।"[1] यह गंगाप्रसाद मिश्र के पूर्वजों का ऐसा स्रोत है, जिससे हमें उनके पूर्वजों की पृष्ठभूमि का पता चलता है।

(२.) माता-पिता :

श्री गंगाप्रसाद मिश्र के पिता पंडित पुत्तूलाल मिश्र तथा माता का नाम लवंगीबाई था। पंडित पुत्तूलाल मिश्र के पिता का नाम पंडित सदासुख लाल मिश्र था और इनके पिता पंडित गिरधारी लाल थे अर्थात् पंडित गिरधारी लाल, बालक गंगाप्रसाद मिश्र के प्रपितामह थे। पंडित गिरधारी लाल का विवाह दुर्जनापुर के पंडित भीमसेन की चार पुत्रियों में से एक पुत्री से हुआ था।

पंडित भीमसेन का जैसा नाम था, वैसे ही, महाभारत के पाण्डवों में से एक- 'भीम' की तरह उनमें वीरत्व के गुण भी थे।....पंडित भीमसेन अंग्रेजी फौज में भर्ती हो गए और कालांतर में बर्मा में उन्हें सीमा पार भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने बर्मा के महाबुंदेला को गिरफ्तार करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और किले पर अंग्रेजों का ध्वज फहराकर अंग्रेजी सेना को विजय दिलवाई थी। उनकी इस वीरता पर मुग्ध होकर अंग्रेजों के कमांडर ने उपहार में उन्हें २३ गाँव और रिसालदार की उपाधि दी तो इनाम में कुछ और भी माँगने को कहा। भीमसेन ने वहाँ लगे एक विशालकाय घंटा माँगा, जिसका वजन ८४ मन का था और वह घण्टा अष्टधातु का था। इस घण्टे को एक विशालकाय हाथी के सूंड़ के माध्यम से बजाया जाता था। अतः कमांडर ने कहा यदि रिसालदर विशाल घण्टे को बजा देंगे तो वह उनको दे दिया जायेगा। रिसालदार भीमसेन ने अपनी युक्ति से वह विशाल घण्टा बजा दिया तो सैन्य कमांडर ने आश्वासन के मुताबिक वह विशाल घण्टा उन्हें दे दिया, जिसकी घोषणा सब सैनिकों के बीच की गई। ये घण्टा पानी के जहाज से पटना तक और पटना से दो नावों को जोड़कर बनाए गए एक बेड़े पर लादकर दुर्जनापुर तक लाया गया था, जहाँ रिसालदार भीमसेन मिश्र ने चार बड़े खंभे बनवाकर हाथियों के सहारे उस घण्ट को स्थापित करवा दिया। रिसालदार उसको रोज बजाते थे। परन्तु गंगा नदी की बाढ़ में खंभों के ढह जाने से वो घण्टा गिरकर जमीन में धंस गया, इसके बावजूद वो घण्टा और उससे जुड़ा कौतूहल लोगों के लिए विस्मय पूर्ण चर्चा का विषय बना रहा। पंडित पुत्तूलाल मिश्र (प्रपौत्र पंडित गिरधारी लाल) के चार पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्री अपने अति शैशव काल में दिवंगत हो गई। सबसे बड़े बेटे का नाम 'जमुनाप्रसाद' और दूसरे बेटे का नाम 'सरजूप्रसाद'

रखा गया। तीसरे बेटे को घर में 'मिट्ठू' और सबसे छोटे बेटे को 'बच्चू' कहा जाने लगा। बच्चू अर्थात पंडित गंगाप्रसाद मिश्र सबसे छोटे और लाडले थे।

पंडित पुत्तूलाल मिश्र बड़ी विचित्र अवस्था में खंडवा पहुँचे थे किन्तु; एक संपन्न और प्रतिष्ठित परिवार से संबंध जुड़ जाने के कारण वह क्रमशः एक छोटी सी रियासत के मुख्तार आम हो गए। और उनमें अपनी खानदानी गुण पनपते रहे अर्थात वह फिजूलखर्ची का दामन थामे रहे। मुकदमों के सिलसिले में जब वह नागपुर जाते, तो वहाँ से साड़ियाँ केवल पत्नी के लिए नहीं लाते परिवार की अन्य महिलाओं के लिए भी लाते। पंडित पुत्तूलाल की शाहखर्ची के कारण ही ऐसी नौबत आयी कि उन्हें विवश होकर जमींदारी बेचनी पड़ी। जमीदारी बिक जाने पर पुत्तूलाल जी पूर्णतया खंडवा में ही रहने लगे, जहाँ उनकी ससुराल थी। यहाँ पुत्तूलाल जी का परिचय सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री माखनलाल चतुर्वेदी से हुआ क्योंकि; वे स्वयं साहित्य-प्रेमी थे। वह स्वयं कवि नहीं थे, किंतु उन्हें कविताएँ पढ़ने का शौक था और अच्छी लगने पर वह उन्हें अपनी डायरी में नोट कर लिया करते थे। यह डायरी अभी सुरक्षित रखी हुई है। पिता का साहित्य प्रेम बालक गंगाप्रसाद को विरासत में मिला। पिताजी का देहावसान अल्पायु में हो जाने के कारण गंगाप्रसाद को साहित्य का संस्कार अधिक समय तक नहीं मिल सका।

"माता लवंगीबाई (मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में स्त्रियों को आदरार्थ नाम के आगे 'बाई' संबोधन लगाकर बुलाया जाता है) बड़ी ही साहसी, स्वाभिमानिनी और दृढ़संकल्प वाली महिला थी, जिसके फलस्वरूप गंगाप्रसाद मिश्र के पिता और बड़े भाई भी उनसे डरते थे। पति की मृत्यु के बाद उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। उनका मायका संपन्न था, किंतु उन्होंने कभी किसी से आर्थिक सहायता नहीं ली। बड़े बेटे जमुनाप्रसाद को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और दिवंगत पिता के प्रभाव स्वरूप आर. एम. एस. में ही नौकरी मिल गई। उनकी तनख्वाह से वह बड़ी मितव्ययिता के साथ बच्चों का पालन-पोषण करने लगी। लवंगीबाई बहुत ही अनुशासन-प्रिय थी और अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के प्रति जागरूक भी थी किंतु; घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण बड़े बेटे की पढ़ाई अधिक नहीं चल सकी।"[2]

(३.) शिक्षा-दीक्षा :

गंगाप्रसाद मिश्र की शिक्षा-दीक्षा का विद्यारंभ खंडवा के 'बंबई बाजार स्कूल' में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा की एक बड़ी रोचक घटना डॉ. (श्रीमती) इंदु शुक्ला ने अपनी ताई-बड़ी

अम्मा से सुनी थी: 'संयुक्त परिवार में रहने और 'चाचा' से डरने के कारण हम भाई-बहिन प्रायः बड़ी अम्मा के साथ रहते, खाते-सोते थे। वह अन्य कथा-कहानियों के साथ-साथ चाचा की बचपन की बातें हमें सुनाती रहती थीं। उन्होंने बताया था कि जब वह व्याहकर अपने ससुराल आई तो चाचा अर्थात उनके छोटे देवर चार वर्ष के थे। गौर वर्ण, गोल गोधना शरीर, घुँघराले बाल और कमर में चाँदी की करधनी पहने बिल्कुल नटखट कृष्ण कन्हैया के भाँति घर में डोलते रहते और अपनी बाल क्रीडाओं से सबका मन मोह लेते थे। वह जो छोटा-सा बालक था, वह कोई सामान्य बच्चा नहीं था। उसे अपने पिता, बाबा आदि से एक अभिजात्य विरासत में मिला था। उसे सबकुछ 'अच्छा' चाहिए था जैसे खाना, पहनना, रहना और यहाँ तक कि स्कूल का अध्यापक भी'। बड़ी अम्मा बताती थी : 'उन्हें जब पहली बार स्कूल भेजा गया तो स्कूल के मास्टर साहब श्यामवर्ण के थे। उन्होंने घर आकर माँ से कह दिया- "अब कल से स्कूल नहीं जाएँगे।" माँ ने पूछा- "क्यों?" तो उत्तर मिला- "हम काले मास्टर से नहीं पढ़ेंगे।"[3]

उस स्कूल में संभवतः उन्हें ज्यादा समय तक पढ़ना नहीं पड़ा। ननिहाल की दखलंदाजी से बचाने के लिए ही शायद चाचा (मिश्रजी) की माँ और बड़े भैया ने वापस उत्तर प्रदेश चले जाने का निर्णय लिया होगा। बड़े भैया जमुनाप्रसाद जी की ससुराल कानपुर में थी- थोड़ी पास; थोड़ी दूर। यह पूरा परिवार लखनऊ स्थानांतरित हो गया।

मिश्रजी का पूरा परिवार लखनऊ आ गया और बड़ी किफायत से रहने लगा। बड़े भाई आर. एम. एस. में नौकरी कर ही रहे थे। मँझले भैया भी कहीं मुनीमी करने लगे। इसलिए दोनों छोटों- 'मिट्ठू' और 'बच्चू' को भी स्कूल में नाम लिखाने के लिए अकेले ही भेज दिया गया। दोनों ने सोचा यह भी कोई नाम है। उन्होंने स्कूल में जमुनाप्रसाद और सरजूप्रसाद की तर्ज पर या ध्वनि साम्य के आधार पर अपने नाम क्रमशः गोविंदप्रसाद और गंगाप्रसाद लिखवा लिए। इस प्रकार अपना नामकरण भी उन्हें अपने आप ही करना पड़ा। स्वावलंबन का यह प्रथम प्रयास था। इसके बाद कक्षा चार से लेकर इंटरमीडिएट तक की शिक्षा लखनऊ के सुप्रसिद्ध कान्यकुब्ज कॉलेज में हुई। मिश्रजी को कक्षा चार-पाँच में श्री टी० एन० चंद्रा ने पढ़ाया। उनका पढ़ाने का तरीका नायाब था। वह पहले कोई कहानी स्वयं सुनाते थे। फिर वही कहानी छात्रों को अंग्रेजी में सुनानी पढ़ती थी। मिश्रजी ने लिखा है- "मैं सहस्त्राक्ष होकर उनकी मुख-मुद्रा देखता और सहस्त्र-कर्ण होकर उनका एक-एक शब्द सुनता। उनकी कक्षा में उनके बाद सबसे पहले कहानी मैं सुनाता था, बाद में और सहपाठी साहस कर पाते थे।"[4]

(४.) परिवार की पृष्ठभूमि :

पंडित गंगाप्रसाद मिश्र के पितामह पं० सदासुख लाल के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ है- भीमसेन मिश्र रिसालदार 'ढाकर' ब्राम्हण थे और उनकी सबसे बड़ी इच्छा थी- कुलीन घरानों से संबंध करने की। भीमसेन के चार पौत्रियों में से एक का विवाह पंडित गिरधारी लाल जी से हुआ। यह गंगाप्रसाद मिश्र के वंश-वृक्षानुसार पितामह थे। पंडित सदासुख लाल के तीन विवाह हुए थे। उस समय बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। उनके दो पुत्र हुए- "एक पुत्तूलाल मिश्र और दूसरे दयाशंकर मिश्र। प्रपितामह के सौतेले भाई भी थे, जो जमीन-जायदाद के लिए षड्यंत्र रचते रहते थे। सौतेले भाइयों ने अपने एक सौतेले भाई को खेल-खेल में गंगा में डूबोकर मार दिया। जब यह बात पता चली तो पुत्तूलाल जी की दादी अर्थात मिश्रजी की परदादी ने पुत्तूलाल को रातों-रात घर से भगा दिया और हिदायत दी कि वह अब लौटकर न आएँ, वरना यह लोग उन्हें भी मार देंगे।"[5] युवक पुत्तूलाल के पास जेब में सिर्फ दो-चार आने थे। वे रात के अंधेरे में कहीं मंदिर में या किसी कुँए की जगत पर सो जाते और दिन में यात्रा करते। किसी तरह अटकते-भटकते वे कानपुर पहुँचे। वहाँ से वे तीर्थ यात्रियों के दल में शामिल हो गए। दो पैसे के भुने हुए चने और एक पैसे का गुड़ झोले में रख लिया। लोटा डोर पास में थी ही। उनके साथ राम नाम जपते चित्रकूट पहुँच गए। वे गाते बहुत अच्छा थे, मधुर कंठ था। चित्रकूट में मंदाकिनी नदी के किनारे बैठे हुए सूरदास का पद- 'अब कैरा खिलेहु भगवान' गा रहे थे। साथ ही एक संभ्रांत परिवार बैठा हुआ था। उनका बच्चा अचानक फिसलकर नदी में गिर पड़ा और बहने लगा। नदी के किनारे रहने के कारण युवक पुत्तूलाल को तैरना तो आता ही था। उन्होंने नदी में छलांग लगा दी और उसे सुरक्षित निकाल लिया, उस परिवार ने कृतज्ञता जताई और उनसे बातें करने लगे। पता चला कि यह युवक इस समय निराश्रित है। उस परिवार के लोग पुत्तूलाल को अपने साथ इंदौर ले आए। इस परिवार के एक संबंधी खंडवा में रेलवे में नौकरी करते थे उन्होंने युवक पुत्तूलाल को आर० एम० एस० (रेल-डाक-सेवा) में नौकरी दिला दी। पंडित पुत्तूलाल मिश्र की जिंदगी चल निकली और अच्छी तरह गुजर बसर होने लगी। खंडवा में ही एक दुबे जी का परिवार था उनकी नजर उस तेजस्वी युवक पर पड़ी- स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन, भागवत-परायण चेतना। उन्होंने अपनी बेटी का विवाह पंडित पुत्तूलाल मिश्र से कर दिया। पंडित पुत्तूलाल मिश्र के चार पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्री अपने अति शैशव काल में दिवंगत हो गई। सबसे बड़े बेटे का नाम 'जमुनाप्रसाद' और दूसरे बेटे का नाम 'सरजूप्रसाद' रखा गया तीसरे बेटे को घर में 'मिट्ठू' और

सबसे छोटू को 'बच्चू' कहा जाने लगा।

श्री गंगाप्रसाद मिश्र के पिता पंडित पुत्तूलाल मिश्र यद्यपि बड़ी विचित्र स्थिति में खण्डवा पहुँचे थे। किंतु एक संपन्न और प्रतिष्ठित परिवार से संबंध जुड़ जाने के कारण एक छोटी-सी रियासत के मुख्तार आम हो गए और उनमें खानदानी गुण भी पनपते रहे अर्थात वह भी फिजूलखर्ची का दामन थामे रहे। उनकी शाहखर्ची के कारण नौबत ऐसी आ गई, कि उन्हें विवश होकर जमीदारी बेचनी पड़ी। जमीदारी बिक जाने पर पुत्तूलाल जी पूर्णतया खण्डवा में ही रहने लगे, जहाँ उनकी ससुराल थी। यहाँ पुत्तूलाल जी का परिचय सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री माखनलाल चतुर्वेदी से हुआ; क्योंकि वह साहित्य-प्रेमी थे। वह स्वयं कवि नहीं थे किंतु उन्हें कविताएँ पढ़ने का शौक था और अच्छी लगने पर वह उन्हें अपनी डायरी में नोट कर लिया करते थे। यह डायरी अभी सुरक्षित रखी हुई है। पिता का साहित्य-प्रेम बालक गंगाप्रसाद को विरासत में मिला। पिताजी का देहावसान उनकी अल्पायु में हो जाने के कारण साहित्य का संस्कार अधिक समय तक नहीं मिल सका।

"माता लवंगीबाई (मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में स्त्रियों को आदरार्थ नाम के आगे 'बाई' संबोधन लगाकर बुलाया जाता है) बड़ी ही साहसी, स्वाभिमानिनी और दृढ़संकल्प वाली महिला थी, जिसके फलस्वरूप मिश्र जी के पिता और बड़े भाई भी उनसे डरते थे। पति की मृत्यु के बाद उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। उनका मायका संपन्न था किंतु; उन्होंने कभी किसी से आर्थिक सहायता नहीं ली। बड़े बेटे जमुनाप्रसाद को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और दिवंगत पिता के प्रभाव स्वरूप आर. एम. एस. में ही नौकरी मिल गई। उनकी तनख्वाह से वह बड़ी मितव्ययिता के साथ बच्चों का पालन-पोषण करने लगी। लवंगीबाई बहुत ही अनुशासन-प्रिय थी और अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के प्रति जागरूक की थी किंतु; घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के ही कारण बड़े बेटे की पढ़ाई अधिक नहीं चल सकी थी।"[6]

(५.) जीवन संघर्ष :

श्री गंगाप्रसाद मिश्रजी का आरंभिक जीवन अनेकानेक कठिन परिस्थितियों से होकर गुजरा है। जीवन कष्टों एवं आघातों से ज्यों-ज्यों इनका साक्षात्कार होता गया, त्यों-त्यों जीवनावस्था का स्वरूप निखरता गया। "मिश्रजी जब तीन वर्ष के थे तो उनके पिता जी का देहावसान हो गया। मिश्र जी के पिता स्वर्गीय पुत्तूलाल बड़ी ही शान-ओ-शौकत से जिंदगी

गुजारने के बाद उनका (पुत्तूलाल) अंत समय बड़ी आर्थिक कठिनाई में बीता। पता नहीं उसकी चिंता में या किसी भयंकर बीमारी के कारण उनकी असामयिक मृत्यु हो गई तथा उनकी अंतिम क्रिया के लिए भी घर में पैसे नहीं थे। तो अच्छे दिनों में खरीदे-इस्तेमाल किए गए लड़िया-भर बर्तनों को बेचकर यह कार्य हो सका।"[7]

'गंगाप्रसाद मिश्र' सबसे छोटी संतान होने के कारण माँ का बड़ा दुलारा था लेकिन उनकी छत्रछाया भी ज्यादा दिन न रही। ७ वर्ष का था, तभी उनका साया उठा गया। मिश्रजी के अभिभावक हुए भैया-भाभी। उस समय मिश्रजी खंडवा (मध्यप्रदेश) में थे। मिश्र जी के बड़े भैया आर० एम० एस० में थे उन्होंने अपना स्थानांतरण लखनऊ करवा लिया। लखनऊ में मिश्र जी की पढ़ाई चलने लगी बचपन से ही मिश्रजी की एक विशेष आदत थी, फीस या किताब-काफी के अलावा अपने खाने-पीने के लिए कभी भी किसी से पैसे न माँगते थे। किसी त्योहार पर अपने मन से भैया कुछ दे देते तो उसे ले लेते थे। मिश्रजी नवीं कक्षा में थे तो उन्होंने ₹ ३ महीने का एक ट्यूशन किया। इस प्रकार उन्होंने जरूरत के सामान खरीदने की व्यवस्था की, जिसमें किताब और मिठाईयाँ विशेष थी। पर मिठाइयों से ज्यादा मिश्रजी को किताबें पसंद थी। कहानी संग्रह और छोटे-मोटे उपन्यास उस समय चार आने से लेकर दो-तीन रुपए तक मिल जाते थे। प्रेमचन्दजी, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', उग्रजी, प्रसादजी, इत्यादि की पुस्तकें रखने की इतनी उत्कट इच्छा थी कि चटोरी जीभ पर यथासंभव नियंत्रण करके पुस्तकें खरीदने लगे और नवीं कक्षा में से ही कहानियाँ लिखनी आरंभ कर दी। इस क्रम में गंगाप्रसाद मिश्र की पहली कहानी सन् १९३४ में प्रकाशित हुई। तब से यह सिलसिला कभी टूटा नहीं।

गंगाप्रसाद इंटर में पढ़ रहे थे तो एक बार उन्हें १२ रुपए का ट्यूशन मिल गया, उससे मिश्रजी के नाश्ते और पुस्तकें खरीदने का काम सुचारू रूप से चलने लगा। मिश्रजी के बड़े भैया पहले तो चाहते थे कि गंगाप्रसाद मिश्र आर० एम० एस० में नौकरी कर ले, जब गंगाप्रसाद मिश्र जी ने आगे पढ़ने की रुचि दिखाई तो वे भी इस पक्ष में आ गए। पर मिश्रजी की भाभी आगे पढ़ने के पक्ष में न थी! वह चाहती थी कि मिश्रजी नौकरी करें और कमाकर घर में तनख्वाह लाकर दें। जिस दिन मिश्रजी का इंटर का परीक्षा फल आया या निकला, तो उनके भैया बोले- "तुम अपने लिए कुछ कमाते ही हो, कुछ थोड़ा और कर लो, कुछ मैं मदद कर दूँगा। तुम्हारी बी.ए. की पढ़ाई चल जाएगी।"[8]

मिश्र जी ने भी कहा- 'ठीक है।'

इस पर उनकी (मिश्रजी की) भाभी बोली- "अब आगे पढ़ने की जरूरत नहीं है।"

तो मिश्रजी ने कहा- "पढ़ने दो भाभी! अच्छी तरह पढ़ जाऊँगा, तो तुम्हें सोने से लाद दूँगा"।

मिश्रजी की भाभी ने बड़ी कड़वाहट से कहा- "आजकल अपनी औलाद तो सोने से लादती नहीं है, पराई क्या लादेगी"।

मिश्रजी हँस-बोलकर खुशामद करके भाभी को अपने पक्ष में कर लेना चाहते थे, पर भाभी एक से एक लगने वाली बातें कहती गईं। वे स्नान करके आई थी, जल भरा लोटा उनके हाथ में था। उन्होंने उसे दिखाते हुए कहा- "गंगा की कसम खाकर कहती हूँ, मैं तुम्हें आगे पढ़ने न दूँगी। "मिश्रजी भी क्रोध में आ गए और उन्होंने कहा- "पढ़ने न दोगी के क्या मायने? तुम यूनिवर्सिटी के सामने धरना तो दोगी नहीं। यह कहो कि भैया को पैसे ना देने दोगी, यह जान लो इससे मेरी पढ़ाई रुकेगी नहीं"।

इस प्रकार मिश्रजी की भाभी गुस्साकर बोली- "मैं आज से तुम्हारे लिए खाना नहीं बनाऊंगी"।

मिश्रजी ने कहा- "आज से मैं घर में खाना खाऊँगा ही नहीं।"[१] उस दिन ही गंगाप्रसाद मिश्र के जीवन में एक नया मोड़ आ गया। अब उनको अपने लिए भोजन, वस्त्र, यूनिवर्सिटी की फीस और किताबों का प्रबंध खुद ही करना था। यह बात १९३७ ई. की है।

पेट भरने से ज्यादा फिक्र मिश्र जी को इस बात की थी कि विश्वविद्यालय में एडमिशन कैसे हो सकेगा। इस कार्य के लिए ६९ रुपए की जरूरत थी। मिश्रजी को एक किताब की दुकान पर सेल्समैन की नौकरी मिल गई। समय प्रातः ९ बजे से रात्रि ९ बजे तक। वेतन १५ रुपए। ९ बजे रात्रि के बाद काम करने पर ओवरटाइम। मिश्र जी रात के २ बजे तक काम करके फीस के पैसे इकट्ठा करने लगे। खाने के नाम पर पूरी और इतनी रात तक जागना, पेट खराब रहने लगा। एक मित्र ने एक भोजनालय में जाकर परिचय करवाया, तो वहाँ एक वक्त दाल-रोटी खाने लगे।

आगे मिश्रजी लिखते हैं, "इन्हीं दिनों मेरे एक घनिष्ठ मित्र आ गए, जिनके माता-पिता और ससुर ने पढ़ाने से इनकार कर दिया था। उनकी कथा सुनकर गंगाप्रसाद मिश्र ने कहा- "एक

फीस इकट्ठा होगी तो तुम पढ़ना, दो की हो जाएगी तो हम दोनों पढ़ेंगे।" सुनकर वे रोने लगे।

गंगाप्रसाद मिश्र ने और ज्यादा ओवर टाइम काम करना शुरू कर दिया। एक वक्त मिश्रजी और उनके दोस्त, दोनों भोजनालय में खाते, दूसरे वक्त दोनों नौ पैसे में दूध, दो पैसे की डबल रोटी और एक पैसे की शक्कर से पेट भर लेते। ६९ रुपए इकट्ठा हुए तो मिश्रजी ने मित्र की फीस जमा कर दी। उस समय ऐसा निश्छल प्रेम था कि मिश्रजी, मित्र के लिए प्राण भी दे सकते थे। जैसे-जैसे दुनिया के रंग में रँगता गया, वह निस्वार्थ प्रेम कहाँ रह गया। डॉ० रामरतन भटनागर 'हसरत' उन दिनों लखनऊ में थे, उन्हें मालूम हुआ कि गंगाप्रसाद मिश्र ने अपना एडमिशन नहीं करवाया, तो उन्होंने इनकी एनरोलमेंट फीस देकर इनका रिजर्वेशन करवा दिया। पूरी फीस यूनिवर्सिटी खुलने के २० दिन बाद जमा हो पायी। इसे कहते हैं 'आप मियाँ तो माँगते और खड़े दरबार।' अपने खाने का ठिकाना न था और मित्र का बोझ भी उठा लिया। लेकिन ईश्वर ने कैसी मदद की। धीरे-धीरे गंगाप्रसाद मिश्र को पैसा कमाना आने लगा, ट्यूशन मिलने लगे। उनकी कहानियाँ भी छपने लगी थी। अब वह अपनी कहानी इसी शर्त पर छपने को देते कि कुछ पैसे तो देने ही होंगे। ५ रुपए भी मिल जाते तो बड़े काम निकलते। उन्हीं दिनों लखनऊ में रेडियो-स्टेशन खुला। पं० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' अवधी के कार्यक्रम के लिए नियुक्त हुए। उनके द्वारा मिश्रजी को रेडियो में कार्यक्रम मिलने लगे। यह हिन्दी के अलावा अवधी में भी सामाजिक नाट्य -रूपक यानी रेडियो-नाटक लिखने लगे। रेडियो के अधिकारियों को मालूम हो गया कि मिश्रजी स्वावलंबी छात्र हैं, तो वे मिश्रजी को बराबर कार्यक्रम देने लगे। शुरू में १० रुपये मिलते थे। लेकिन उस वक्त उसकी बड़ी कीमत थी। तब तक रेडियो पर कहानियाँ प्रसारित न होती थी। मिश्रजी ने डायरेक्टर ऑफ़ प्रोग्राम से मिलकर कहा कि कहानी भी स्पोकेन वर्ग हो, रेडियो पर कहानी भी प्रसारित होनी चाहिये। तो वे बहुत हँसे। कहने लगे- "मुझे मालूम है कि मिश्रजी आप अफसाना निगार हैं"। मिश्रजी ने अपने तर्क दिए- "कहानी तो सुनने-सुनाने की चीज ही है। इसकी एक कला है। रेडियो पर यह बहुत सफल होगी।"[10] बात उनकी समझ में आयी। दिल्ली की बैठक में उन्होंने प्रस्ताव रखा, तो वह स्वीकृत हो गया। लौटकर आए तो बोले कि लखनऊ से पहले प्रसारित होने वाली कहानियों में गंगाप्रसाद मिश्र की कहानी अवश्य होगी। उस समय तक मिश्रजी की कहानी लेखक के रूप में कोई खास स्थिति नहीं बन पायी थी। परन्तु यह उनका सौजन्य था। यह ऐतिहासिक बात है कि इस पेशे के आकाशवाणी के इतिहास में आकाशवाणी लखनऊ से पहली कहानी प्रसारित हुई और वह आदमी गंगाप्रसाद मिश्र ही थे। ट्यूशन, रेडियो,

कहानी सब मिलाकर मिश्रजी और उनके मित्र की गाड़ी चल निकली। सालभर बाद मित्र की ससुराल से पैसा आने लगा। मिश्र जी और उनके मित्र ने बी.ए. कर लिया, अब तो भैया-भाभी का रूप भी बदलने लगा। पंडित गंगाप्रसाद मिश्र ने लिखा है- 'बी.ए. ऑनर्स में था, तो विश्वविद्यालय एक में पार्ट-टाइम काम मिल गया। एम.ए. फाइनल में आया, तो एक स्थानीय विद्यालय में ही पार्ट-टाइम काम के ३० रुपए मिलने लगे। मुसीबत यह थी कि पहले ३ घंटे पढ़ाकर यूनिवर्सिटी पढ़ने जाता था, वहाँ से फिर उस विद्यालय में एक घंटा पढ़ने जाता था। "विद्यालय और विश्वविद्यालय में दो-ढाई मील की दूरी थी।"[11]

इस तरह गंगाप्रसाद मिश्र ने एम.ए. पास कर लिया। फाइनल ईयर में ही उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'विराग' लिखा। उसके बाद नौकरी मिल गई। वह कहते हैं : कि 'उन दिनों की याद करता हूँ तो लगता है कि उस समय किए हुए संघर्ष ने कितना आत्मविश्वास दिया, कितना आत्मबल बढ़ाया। आगे चलकर जीवन में वह कितना सहायक सिद्ध हुआ।'

१.२ अभिरुचि एवं व्यक्तित्व विश्लेषण :

गंगाप्रसाद मिश्र की अभिरुचि (या रुझान) सिर्फ साहित्य ही नहीं थी बल्कि; उन्होंने मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक, (अब भातखण्डे संगीत सम-विश्वविद्यालय) लखनऊ से ३ साल तक नियमित शास्त्रीय गायन सीखा था किंतु परिस्थितियों के नाते ५ वर्षों का पाठ्यक्रम पूरा नहीं कर पाए। बास्केटबॉल, हॉकी व बैडमिंटन उनके प्रिय खेल थे। उन्होंने गवर्नमेंट इंटर कॉलेज झाँसी में हॉकी खिलाड़ी मेजर ध्यानचंद्र और बस्ती में पद्मभूषण के. डी. सिंह बाबू (रोम ओलंपिक हॉकी टीम के कैप्टन) का सम्मान किया था। वह बहुआयामी गुणों के स्रोत थे। गवर्नमेंट जुबली कॉलेज लखनऊ में उन्होंने प्रसिद्ध बाँसुरी वादक पन्नालाल घोष का अभिनंदन किया तथा बस्ती में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध गायक डॉ० रामनारायण का सम्मान किया था। इससे समझा जा सकता है कि गंगाप्रसाद मिश्र गुणीजन के भी कैसे कद्रदान थे।

कवि सम्मेलन कराना तो उनके लिए साहित्य व्यसन जैसा था। सन् १९४७ या १९४९ में झाँसी के गवर्नमेंट कॉलेज में आयोजित कवि सम्मेलन में गंगाप्रसाद मिश्र ने डॉ० हरिवंश राय बच्चन को जब आमंत्रित किया था तो आज के महानायक अभिताभ बच्चन एक बच्चे के रूप में लाल स्वेटर पहनकर पिता के साथ आए थे। वे अपने कॉलेज में आयोजित कवि सम्मेलनों में न सिर्फ नामचीन कवियों को आमंत्रित करते थे। बल्कि उभरते कवियों को भी मंच देकर

प्रोत्साहित करते थे।

गोपालदास 'नीरज', भारतभूषण, श्रीमती स्नेहलता 'स्नेह', सोमठाकुर आदि के प्रारंभिक दिनों में गंगाप्रसाद मिश्र ने कविता का मंच दिया। उनके द्वारा आदर एवं आत्मीयता पूर्वक आमंत्रित करने से कवियों के साथ उनके पारिवारिक संबंध बन जाते थे। वरिष्ठ स्थापित कवियों-साहित्यकारों का पूर्ण समादर और नए उभरते कवियों को स्नेहपूर्ण-प्रोत्साहन का ही परिणाम रहा है कि गंगाप्रसाद मिश्र से सदैव हर कोई प्रसन्न व संतुष्ट रहा।

"यही सुहृद व्यवहार उनका शायरों के साथ भी रहा। अत: जिसे भी वह बुलाते वह सहर्ष पहुँच जाता था। कवि सम्मेलन आदि मुशायरों के गंगा-जमुनी आयोजन का सहिष्णु-सौहार्द-पूर्ण आयोजन गंगाप्रसाद मिश्र की देन है।"[12]

१.३ साहित्य रचना के विविध आयाम :

साहित्यकार जब जीवन से नाता जोड़ता है, तब उसे बहुत से संदर्भ अपने जैसे औरों के एवं मानव मात्र के लगने लगते हैं। जब ऐसा होता है तब सच्चे अर्थ में सृजन होता है। प्रत्येक युग का संवेदनशील रचनाकार अपने समकालीन जीवन के यथार्थ को जीता हुआ उसकी विसंगतियों से टकराता हुआ और नए मूल्यों के सृजन, सँज़ोता हुआ समाज में अपना अस्तित्व बनाता है। अतीत के शिलापट्ट पर वर्तमान का चित्र बनाने के लिए कतिपय ऐसे मूल्यों की स्थापना के लिए भी सन्नद्ध होता है, जो अपनी प्रासंगिकता रखते हैं। गंगाप्रसाद मिश्र ऐसे ही सर्जक हैं। उन्होंने युगबोध का नक्शा प्रस्तुत करते हुए भावी के संकेत भी दिए हैं और जिजीविषा मूलक साधना अभी की है।

गंगाप्रसाद मिश्र साहित्य सृजन के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग करते रहे हैं। तथा उनकी रचनाएँ अनेक विधाओं में उपलब्ध हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, रेडियो नाटक, यात्रावृत्त, बाल साहित्य, समीक्षा, आलोचना आदि के क्षेत्र में अपनी रचना शीलता का परिचय दिया है। उनका साहित्यिक विस्तार निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

(१.) उपन्यास साहित्य

गंगा प्रसाद मिश्रजी ने निम्नलिखित उपन्यासों की रचना की है :

(१.) विराग (१९४१ ई.)

(२.) संघर्षों के बीच (१९४४ई.)

(३.) महिमा (१९४५ ई.)

(४.) तस्वीरें और साये (१९६४ ई.)

(५.) सुनारवाणी के पार (१९६८ ई.)

(६.) जहर चाँद का (१९७६ ई.)

(७.) मुस्कान है कहाँ (१९८२ ई.)

(८.) रांग साइड (१९९२ ई.)

१. विराग (१९४१ ई.) :

श्री गंगाप्रसाद मिश्र का पहला उपन्यास 'विराग' (१९४१) श्रद्धेय डॉ० बड़थ्वाल की शुभकामनाएँ लेकर प्रकाश में आया है। भूमिका में लेखक लिखता है- 'वह संसार के सामने अपना यह उपन्यास धड़कते हुए हृदय से नहीं रख रहा है।' डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल लिखते हैं, 'कोई कहे तो कहे कि इसमें लेखक का अहम या प्रगल्भता है, लेकिन मैं इसे लेखक का आत्मविश्वास मानता हूँ। आत्मविश्वास को मनुष्य की निज उन्नति में अत्यंत आवश्यक वस्तु समझता हूँ। और फिर लेखक तो इसके बिना एक पल भी नहीं रख सकेगा। विरागकार में यदि इतना आत्मविश्वास या साहस ना होता तो वह शायद यहाँ ना होता, जहाँ उसे आज हम देख रहे हैं। जीवन की विषम परिस्थितियों और अवहेलनाओं से लड़कर उसने अपने लिए स्थान बना लिया है।'

डॉ० रामविलास शर्मा हंस (जुलाई १९४२) में लिखा था- "विराग एक प्रगतिशील सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास की प्रधान पात्र 'विराग' हैं और उसी के नाम पर उपन्यास का नाम रखा गया है। उपन्यास का यह उनका पहला पहला प्रयत्न होते हुए भी इसमें उन्हें आशातीत सफलता मिली है। रोमांस के साथ उन्होंने ऐसी राजनीतिक समस्याओं को अपने उपन्यास का विषय बनाया है, जिनका हमारे जीवन से घनिष्ठ संबंध है। मजदूर और मिल।

मालिक का संघर्ष चित्रित किया है।....वह उपन्यास को सजीव बनाने में काफी है। निर्माण की दृष्टि से यह उपन्यास प्रायः निर्दोष है। वार्तालाप अत्यंत स्वाभाविक है और इस स्वाभाविकता के लिए लेखक को प्रेमचंद से प्रेरणा मिली है। कथानक भी सुगठित है और चरित्र-चित्रण में स्पष्टता और सजीवता है। लेखक के पास मूर्ति बनाने के लिए सब साधन मौजूद है।[13]

विराग के संबंध में इस उपन्यास के लेखन के दौर के समीक्षक डॉ. प्रकाशचंद्र गुप्त ने समीक्षा करते हुए लिखा है- "यह हमारे नित-प्रति के जीवन की झाँकी है। संयुक्त परिवार की नृशंसता और दबे व्यभिचार का यहाँ परिचय मिलेगा। कुछ अच्छे व्यक्ति-चित्र भी विराग में हमें मिलेंगे।....चलते-फिरते जीवन का नजारा तो जरूर मिलेगा।

'विराग' मध्यमवर्ग की समस्याओं को लेकर चला है। 'विराग और अचल' (इस उपन्यास के नायक-नायिका) ने अपने को खोकर पा लिया किंतु; जब आखिरी लड़ाई शुरू होगी, उसमें मजदूर वर्ग नेता होगा विराग और अचल सिपाही।

'विराग' हिंदी उपन्यास का सही रास्ते की ओर लाने में एक कदम है।"[14]

विराग लेखक के शब्दों में : 'चंचल नेत्रों में लहराता हुआ एक समुद्र, यौवन की स्वाभाविक लाली फूट पड़ते अंग, काले केस और उन्नत वक्षस्थल लिए हुए १६ वर्ष से ही विधवा है। समाज की विडंबना और घरवालों की संकीर्णता से वह एक रईस वर के साथ ब्याही गई, जिसमें वेश्यागामी इत्यादि होने की सभी दुर्गुण थे।'

२. संघर्षों के बीच (१९४४ ई.) :

यह उपन्यास १९४४ ई. में लिखा गया। श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखा है- "शहरी जीवन के निम्न-मध्यम वर्गीय उपन्यासों की ऐसी भी उपकोटी है जिसमें एक परिवार को लक्ष्य बनाकर उसके विभिन्न सदस्यों की लगभग स्वतंत्र उपकथाओं को एक संस्लिष्ट कथानक में प्रस्तुत किया जाता है। अंग्रेजी में गाल्सवर्दी का 'फारसाइट सागा' इसी श्रेणी के उपन्यासों में है। हिंदी में भगवतीचरण वर्मा का 'टेढ़े मेढे रास्ते' और नए उपन्यासों में गोविंद मिश्र का 'पाँच आंगन वाला घर' तथा ज्ञान चतुर्वेदी का 'बारहमासी' भी इसी श्रेणी के हैं, पर इस कोटि के उपन्यासों में संभवतः पहला और गुणवत्ता की दृष्टि से पहली पंक्ति का उपन्यास गंगाप्रसाद मिश्र का 'संघर्षों के बीच' है। हिंदी साहित्य में आज भी ऐसी कई कृतियाँ है, जो

आलोचकों की विवेचना दृष्टि से छूट गई हैं और जिनका समुचित मूल्यांकन होना बाकी है। 'संघर्षों के बीच' वैसी ही एक उपेक्षित कर दी गयी कृति है। १९६७ में लोक भारती, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित इसके पांचवें संस्करण में लेखन ने जो भूमिका दी हैं उसके कुछ अंश विशेष रूप से ध्यातव्य हैं; इनसे जीवन और साहित्य के प्रति लेखक की उदात्य दृष्टि स्वतः स्पष्ट हो जाती है। 'संघर्षों के बीच' एक ऐसे परिवार की कथा है जिसके कर्ता ने अपने जीवन का उद्देश्य ही यह बना लिया है की उसे और उसके परिवार को बिना हाथ पैर हिलाए अच्छे से अच्छा खाने पीने को और पहनने को मिले....उनके जीवन में दूसरे प्रकार का दौर आया। धन जैसी तेजी से आया था वैसे ही चला गया....परिवार के विभिन्न सदस्यों ने इस बदलती हुई परिस्थिति का कैसे सामना किया यही इस उपन्यास में विशेष रूप से चित्रित है।[15]

हिंदी लेखक और कहानीकार कांतिचंद्र सौनरेक्सा ने 'संघर्षों के बीच' उपन्यास को हिंदी के कथासाहित्य के प्रगति का ज्वलंत स्तंभ माना है। वह लिखते हैं- "मैं हैरान हूँ कि एक छोटी-सी किताब में गंगाप्रसाद मिश्र ने एक पीढ़ी के समाज की समूची सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था का इतिहास किस तरह समाविष्ट कर दिया है! इस उपन्यास में एक शब्द भी व्यर्थ नहीं है इसके प्रत्येक पैराग्राफ में एक नई और पूरी घटना है। संघर्षों के पात्र पतन की ओर जा रहे हैं और यही उसका सबसे उभरा हुआ यथार्थ है और कठोर सत्य है। 'संघर्षों के बीच' की साफ सुथरी भाषा और एकदम सुस्पष्ट शैली तथा उसके शिष्य परिहास से अनेक उपन्यासकार ईर्ष्या कर सकते है। इस उपन्यास में हिंदी के गद्य का एक विकसित और वैज्ञानिक रूप हमें देखने को मिलता है।"[16]

३. महिमा (१९४५ ई.) :

गंगाप्रसाद मिश्र का तीसरा उपन्यास 'महिमा' जो सन् १९४५ ई. में प्रकाशित हुआ था। यह मनोवैज्ञानिक कोटि का महत्वपूर्ण उपन्यास है। मिश्रजी के इस उपन्यास की कथा नायिका एक स्त्री 'महिमा' इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है। महिमा की कथा 'नैरेटर' की प्रेमाकुल अंत: संबंधों का ऐसा आख्यान है, जो भाई-बहिन की धर्मशील मर्यादा-वृत्त में संकुचित होकर रह जाता है। प्रेम के मनोविज्ञान की इस कथात्मकता में यौनाकर्षण और संयम के बीच जो तनाव विकसित होता और फैलता है, उसमें चरित्र की शुचिता भी अक्षुण्य रहती है, साथ ही 'दृष्टि का पेय', 'रक्त का भोजन' बनने से रह-रह जाता है। यौनगत यथार्थ और चरित्रगत आदर्श के बीच घटते-बढ़ते द्वंद्व में मध्यवर्गीय आर्थिक-सामाजिक संदर्भों का उन्मूलन बहुत ही स्वाभाविक और निर्व्याज है।

४. तस्वीरें और साये (१९६४ ई.) :

सन् १९३९ ई. से सन् १९४८ ई. के बीच चार उपन्यासों के प्रकाशन के पश्चात् यह उपन्यास १९६४ ई. में प्रकाशित हुआ। गंगाप्रसाद मिश्र का तीसरा उपन्यास 'पथ के काँटे' झाँसी में वृन्दावनलाल वर्मा के पुत्र द्वारा प्रकाशित करने के लिए लिया गया, पर खो दिया गया था। ट्यूशन को केन्द्र में रखकर लिखे 'ट्यूटर' विषयक इस उपन्यास के बारे में लंबे अंतराल के विषय में लेखक ने। 'तस्वीरें और साये' की भूमिका में स्वयं लिखा है- "इस घटना का ('पथ के काँटे' की पाण्डुलिपि खो जाने का) मुझ पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि बहुत दिन उपन्यास लिखने का मन ही न हुआ। बहुत वर्षों के बाद पाठकों से नया परिचय बना रहा हूँ।"[17] इस उपन्यास में लखनऊ के एक मध्यवर्गीय जीवन का सजीव चित्रण है। लखनऊ का गली टोले, यहाँ का विद्यार्थी जीवन सभी इस उपन्यास में मानो सहस्त्र जिह्वाओं से बोल उठे हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु बहुत दूर तक एक साथ एक नहीं, दो-दो कथानकों को लेकर चली है। उपन्यास में एक कथा चंद्रभाल अवस्थी की तो दूसरी कथा है बलदेव की। इन दो कथानको के मध्यम से मध्यवर्गीय समाज के दो भिन्न पक्ष प्रकाश में आते है और शहरी जीवन के चित्रण में इन्हें परस्पर पूरक कहा जा सकता है। चंद्रभाल अवस्थी का जीवन एक संस्कारी मध्यवर्ग को प्रस्तुत करता है, जिसके मन मस्तिष्क में उच्चाकांक्षाएँ और वांछनीय जीवन दृष्टि के सपने पलते रहते है, किंतु सुरसा की भाँति बढ़ती हुई मंहगाई, जाति-बिरादरी की सामाजिक रूढ़ियाँ, पारिवारिक समस्याएँ, बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था आदि के कारण उनका जीवन विपन्नता और असहाय स्थिति की करूण कहानी बन जाता है। दूसरी ओर बलदेव का जीवन शहरी जीवन की धूर्तता, मक्कारी, दुर्व्यसन, अनैतिकता, बेशर्मी और प्रत्येक स्थिति में अपना काम बना लेने की स्वार्थवृत्ति का लेखा-जोखा बड़ी सहजता के साथ प्रस्तुत करता है। लेखक ने दोनों ही जीवन रूपों के सामाजिक और पारिवारिक चित्रों को उभारा है।

५. सोनारवाणी के पार (१९६८ ई.) :

यह उपन्यास में गंगाप्रसाद का पाँचवा उपन्यास है जो सन् १९६८ ई. में प्रकाशित हुआ था। यह भी एक मनोवैज्ञानिक मार्मिक प्रेमकथा है, पर 'महिमा' उपन्यास से भिन्न! मिश्रजी ने प्रस्तुत उपन्यास में आगे घटित होने वाले घटनाक्रम का दो स्थानों पर स्पष्ट संकेत प्रारंभिक पंक्तियों में बड़ी कलात्मकता से किया है- "किसी विरहणी की भाँति सदैव तड़पने और सिर

पटकने वाली इस पहाड़ी सुनार वाली नदी के किनारे स्थित एक डाक बंगला स्नेह लता को अपनी कश्मीर यात्रा में ही इतना पसंद आ गया था, जिसे प्रथम दृष्टि में प्रेम हो जाना कहा जा सकता है।"[18] उपन्यास के विश्लेषण में हम पाते हैं कि उपन्यास का प्रमुख नारी पात्र 'स्नेह' अपने ट्यूटर 'अनुराग' से जिस दिन ट्यूशन पढ़ने बैठती है, उसी दिन से अनुराग उसे अच्छा लगने लगा- 'प्रथम दृष्टि में ही अनुराग के व्यक्तित्व ने उसे अपने ओर आकर्षित कर लिया और उसके इतना कह देने भर से कि यदि वह ठीक से अपना काम करके नहीं लाएगी तो वह चला जाएगा, स्नेह विह्वल हो जाती है। जब-जब अनुराग किन्हीं भी कारणों से स्नेह से दूर रहता है, स्नेह की मन: स्थिति सोनारवाणी जैसी हो जाती है। उपन्यास के अंत में तो वह पूरी तरह विरहणी होकर तड़पती और सिर पटकती है।

६. जहर चाँद का (१९७६ ई.) :

यह उपन्यास गंगाप्रसाद मिश्र का छठा उपन्यास है, जो १९७६ ई. में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास का केंद्र है रामनगर स्थित विद्या मंदिर इंटर कॉलेज। इसके माध्यम से लेखक ने उत्तर प्रदेश ही नहीं बल्कि समूचे देश की शिक्षण संस्थाओं का कच्चा चिट्ठा उसकी तमाम विकृतियों, विसंगतियों एवं विडंबनाओं को उद्घाटित करके रख दिया है।

उपन्यास का नायक कौशल है। उसने गाँव के पुराने ढंग के गुरु से परिश्रम पूर्वक प्रारंभिक शिक्षा के विद्या-व्यसनी सच्चे गुरुजनों से ज्ञान ही नहीं पाया, बल्कि ज्ञान को जीवन और चरित्र से जोड़ना सीखा है। वह थानेदारी से ज्यादा आदर्श अध्यापक होने में जीवन को सफल समझता है उसके आदर्शवादी भोले मन ने यह नहीं जान पाया है कि युग बदल गया है। परिश्रम निष्ठा और लगन जैसे गुण शब्द-कोश तक सीमित रह गए हैं। मनमानी करना और शॉर्टकट से सफलता प्राप्त करना ही अध्यापक और क्या विद्यार्थी, सभी का लक्ष्य हो गया है।

७. मुस्कान है कहाँ (१९८२ ई.) :

यह उपन्यास गंगाप्रसाद मिश्र का सातवाँ उपन्यास अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष से प्रेरित है। यह सन् १९८२ ई. में प्रकाशित हुआ था।इस उपन्यास में तीन खण्ड है और कुल इक्कीस कथाएँ या एपिसोड्स हैं-- पहले खण्ड में सात दूसरे खण्ड में आठ तथा तीसरे खण्ड में छह कथाएँ हैं। यह सभी कथाएँ समाज के सभी सामाजिक वर्गों के बच्चों से संबंधित है। समाज के उच्च वर्ग घरानों के बच्चों की समस्याओं की संगत निम्न वर्ग तथा मध्य वर्ग के बच्चों से बैठती नहीं, इसलिए

उपन्यास में उनकी उपस्थिति ठीक ही है। समाज का अधिकांश निम्नवर्ग तथा मध्यवर्ग से ही बनता है इन दोनों वर्गों के ही बच्चे उत्पीड़न तिरस्कृत और उपेक्षित होते हैं।

८. रांग साइड (१९९२ ई.) :

यह गंगाप्रसाद मिश्र का अंतिम उपन्यास है, जो १९९२ ई. में प्रकाशित हुई थी। यह उपन्यास तीन हिस्सों में बटा है : पहला हिस्सा पृष्ठ ७ से ५७ तक दूसरा हिस्सा पृष्ठ ५८ से ८६ तक तथा तीसरा हिस्सा पृष्ठ ८७ से११२ तक फैला है। पहले हिस्से में चैतन्य स्वरूप श्रीवास्तव तथा उनकी पत्नी प्रतिभा का पारिवारिक सुख वर्णित है। चैतन्य स्वरूप साहब एक मध्यवर्गीय व्यक्ति है। वह लेखकीय आदर्शों तथा रुचियों का अपने व्यक्तित्व से प्रतिनिधित्व करते हैं। डॉ० मंजू शर्मा ने 'रांग साइड' की विषय-वस्तु को एकदम नई और समय के साथ ताल मिलाती हुई माना है और हॉकी या फुटबाल के खेल में गलत तरह से गेंद छीनने की अनुचित कोशिश को 'रांग साइड' कहा जाता है। यही रांग साइड शब्द इस उपन्यास के शीर्षक के मूल में है। मंजू शर्मा के अनुसार, 'रांग साइड उपन्यास में स्त्री-पक्ष को बड़ी ईमानदारी से उठाया गया है। लेखक ने खेल को स्त्री-अस्मिता के प्रतीक के रूप में खड़ा किया है और उसके इर्द-गिर्द स्त्री पक्ष के संकटों और चुनौतियों को बुनकर, उनके बीच से स्त्री के प्रगतिशील रूप का रास्ता निकाला है। लेखक का संपूर्ण ज्ञान स्त्री के पक्ष में समाज के परिवर्तन की मांग पर रहा है।[19]

'रांग साइड' के बावजूद लेख में बकुल (बंधु कुशावर्ती) ने लिखा है हिंदी कथाकारों उपन्यासकारों को यह (खेल) विषय और क्षेत्र रांग साइड ही क्या, घुसपैठ-सा खतरनाक लगता है। इस सिलसिले में हिंदी के वरिष्ठ लेखक, कथाकार और उपन्यासकार पंडित गंगाप्रसाद मिश्र का लेखन हमें आश्वस्त करता रहा है। 'परिभाषाओं के कगार' पं० गंगाप्रसाद मिश्र की अत्यंत प्रसिद्ध कहानी है, इसी कहानी को विस्तार देकर मिश्रजी ने अपना उपन्यास 'रांग साइड' लिखा है। यह उपन्यास अपने देश के लगभग पूरे खेल वातावरण का यथार्थ उपस्थित करता है।

(२.) कहानी साहित्य

गंगाप्रसाद मिश्रजी की कहानी यात्रा बीसवीं सदी के चौथे दशक से आरंभ हुई थी और आठवें दशक तक अनवरत चलती रही। उनकी कहानियाँ 'हंस', 'नया साहित्य', 'माधुरी', 'चाँद' आदि जैसी तत्कालीन यशस्वी पत्रिकाओं में छपती रही 'माध्यम धर्मयुग', 'माधुरी', 'चाँद', 'स्वतंत्र भारत', 'नवजीवन' जैसे पत्रों-पत्रिकाओं ने भी उनकी कहानियों को बड़े आदर के साथ छापा।

गंगाप्रसाद आरंभ से ही 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़ने वाले में रहे हैं। इसलिए उनकी कहानियों की संवेदना मूलतः प्रगतिशील है। उनके आदर्श प्रेमचंद थे और सयोग के उनको सन् १९३५-१९३६ में ही प्रेमचंद का सानिध्य मिल गया था। उनकी कहानियों का सामाजिक संदर्भ बहुत व्यापक और परिवर्तन- कारी है। वह व्यक्ति से इसे आरंभ करते हैं और परिवार, पड़ोसी, गाँव, नगर तथा देश- देशांतर तक इसे विस्तृत करते जाते हैं। इसमें उनकी दृष्टि उन मनुष्यों पर ज्यादा टिकती है, जो या तो वंचित हैं या उत्पीड़ित हैं। इनमें स्त्री- पात्र अधिक संख्या में है। वे पुरुष- वर्चस्य का विरोध करते हैं, स्त्री- अस्मिता का पक्ष लेते हैं। वे स्त्री को पुरुष के विरोध में खड़ा नहीं करते हैं, बल्कि स्त्री-पुरुष दोनों का परस्पर पूरक बनाकर पेश करते हैं।

गंगाप्रसाद मिश्र अनेक कहानियाँ उनकी रुचियों के बिम्ब रचती हैं। उनकी रुचियों में अच्छा स्वास्थ्य, खेल-कूद, ललित कलाएँ प्राथमिकता पाती हैं। वह मानते थे कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए व्यायाम योग संयम तथा आवश्यक है। अनेक कहानियों में इनको मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अनेक कहानियाँ स्त्रियों को खेलकूद में प्रोत्साहित करती हैं। शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, नृत्य कला के साथ-साथ साहित्य रचना को आधार बनाकर मिश्रजी ने कई कहानियाँ लिखी हैं। इन विषय में हिंदी में बहुत कम कहानियाँ पढ़ने को मिलती हैं।

श्री गंगाप्रसाद मिश्र ने लगभग २५० से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कुछ कहानियाँ अभी अनुपलब्ध हैं। इसके बावजूद उनकी आठ खण्डों की ग्रंथावली के खण्ड : छः व सात में संकलित हो गई हैं। उनके कहानी संकलन निम्नांकित हैं-

(१.) सरोद की गत (१९४१ ई.)

(२.) आदर्श और यथार्थ (१९४४ ई.)

(३.) नया खून (१९४४ ई.)

(४.) नई राहें (१९४७ ई.)

(५.) कांटों का ताज (१९५०ई.)

(६.) बाँहों के घेरे गर्दन की मजबूरियाँ (१९६२ ई.)

(७.) दूध-पूत (१९७३ ई.)

(८.) मेरी प्रिय कहानियाँ (१९७८ ई.)

८. मेरी प्रिय कहानियाँ (१९७८) :

इस कहानी संग्रह में लेखक ने अपनी पसंदीदा सोलह कहानी संकलित की है। इन कहानियों को पढ़ते समय लगता है कि प्रेमचंद कालीन किसी कथाकार को ही पढ़ रहे हैं। इसका कारण यह है कि उस युग का प्रत्येक कथाकार प्रेमचंद की प्रगतिशीलता से भरपूर प्रभावित था। गंगाप्रसाद मिश्र इस संकलन की कुछ प्रमुख कहानियाँ इस प्रकार हैं-

१. गंगालाभ :

इस कहानी में एक युवा का धार्मिक कर्मकांड से मोहभंग होता है, जब वह अपनी माँ के क्रिया-कर्म के लिए गंगा घाट जाता है। धार्मिक पाखंड का मखौल उड़ाते हुए कहानीकार बार-बार नई दृष्टि की बात करता है।

२. कफन कसोट :

इस कहानी का नायक लावारिस मुर्दों की अंत्येष्टि का कार्य करता है। जिसकी अमानवीय कुचेष्टाओं से कहानी की शुरुआत होती है। कहानी के अंत तक आते-आते कहानीकार उस छोटे आदमी के चरित्र को मानवता के उचित सोपान पर ले जाता हैं।

३. शशि :

यह कहानी डायरी रूप में है, जिसे कहानी के मुख्य चरित्र शशि का पिता दर्ज करता है। शशि १० साल की एक लड़की है, जिसकी मृत्यु हो चुकी है। कहानी पिता के दुख की सघनता को पन्ने दर पन्ने खोलती जाती है, साथ ही लड़की के जन्म का दु:ख और स्त्री-समाज की तत्कालीन दारुण-स्थिति को मर्मस्पर्शी भाषा और मानवीय संवेदना के साथ व्यक्त करती है। यहाँ लेखक पिता और पुरुष के रूप में दु:ख में भी सवाल करता है और स्त्रियों की अमानवीयता के लिए अपना भी धिक्कार करता है।

४. चरखे के बाद :

यह कहानी जहाँ विस्थापन, प्रेम और गरीबी के बीच पिसती स्त्रियों की कथा कहती है, जहाँ कुशलता के अभाव में उनका शोषण होता है ।

५. खानदानी पीलू :

यह कहानी एक संगीतकार के संगीत और बाजारवाद के द्वंद्व को उकेरती है जो अन्ततः 'संगीत' से नायक के मोह भंग पर समाप्त होती है।

६. पुरुष :

इस कहानी में स्त्रियों को धोखा देता हुआ पुरुष। एक स्त्री उसकी पत्नी है और दूसरी उसकी प्रेमिका। दोनों से वह प्रेम का ढोंग कर रहा है होता है, लेकिन पत्नी उसके पाखंड को समझ रही है। पत्नी का चरित्र बिचारी का नहीं है और वह समसामयिक विकल्प हीनता की वजह से और तो कोई कदम नहीं उठा पाती है लेकिन; दृढ़ता से पति का तिरस्कार कर विरोध दर्ज करती है।

(३.) बालकथा साहित्य

मिश्रजी को बचपन से ही कहानियाँ सुनने का शौक था। बिना कहानी सुने इनको नींद नहीं आती थी। मिश्र बच्चों को बहुत प्यार करते थे। इन्होंने बच्चों के लिए बालसाहित्य कि रचना गंगाप्रसाद मिश्र ने की। इनके दो बाल-संग्रह इस प्रकार हैं :

१. सूरज कब निकलेगा :

इस संग्रह में निम्नलिखित बाल- साहित्य संग्रहित हैं।

चायघर

पालिशवाला

केवल की कहानी

आज गुरु भरत

गुलाब जामुन का स्वाद

कोढ़ में खाज

वज्रपात

राम भरोसे

पहले की कथा

२. विगुल :

इस संग्रह में भी निम्न बालसाहित्य संग्रहित हैं।

चोरी

गरीबी में पढ़ाई

खेल में गड़बड़

व्यवहार

जिवो पर दया

चढ़ना- चढ़ाना

बालचर

शैतानी

मित्रता

(४.) रेडियो नाट्य साहित्य

श्री गंगाप्रसाद मिश्र ने उपन्यास और कहानी के अलावा प्रचुर मात्रा में रेडियो रचना की है। इनमें उन्होंने ध्वनि-नाटक या ध्वनि-रूपक के माध्यम से अपने लेखक को मुखरित किया है। मिश्रजी ने अवधी भाषा में भी नाट्य-रूपक लिखें है। इनकी संख्या अठारह है। यह सभी ध्वनि-नाटक या ध्वनि रूपक हैं और रेडियो से प्रसारित हुए हैं। मिश्रजी अच्छी तरह जानते थे कि जगा हुआ लोक ही स्वतंत्र कामी तथा वंचना-मुक्त हो सकता है। इसलिए उन्होंने इन रूपको के माध्यम से उस लोग को जगाना चाहा है, जो ग्रामलोक या अवधी भाषी था, पिछड़ा था और सजग नहीं था। इसलिए यह रूपक रेडियो के जन-संचार माध्यम से जुड़कर लोक शिक्षण के प्रभावी माध्यम बने।

गंगाप्रसाद मिश्र ने इन रूपकों के माध्यम से ग्रामलोक और उसके कृषक-समाज को संबोधित किया गया है। कृषक-समाज की खुशहाली के लिए कृषि के प्रति मनोराग की जरूरत थी और कृषि को उन्नत बनाने के लिए कृषि विषयक समझदारी अपेक्षित थी। उनके रूपकों- जाड़े की रात, हलधर, बीज-बुवाई तथा उत्तम खेती की अंतर्वस्तु कृषि और कृषक समाज के विकास को लक्ष्य बनाती है। 'नया जीवन' तथा 'धरती का धन' ग्राम और कृषि के प्रति सानुरागता का विचार प्रकट करते हैं।

गंगाप्रसाद मिश्र की यथार्थ पारखी दृष्टि से यह बात छिपी नहीं थी कि स्वार्थ बुद्धि तथा घर कर गई अनेक बुराइयों के कारण ग्रामलोक टुकड़े-टुकड़े, कलह-पुरित तथा अभावग्रस्त हो रहा था। उन्होंने अभावों, विशेषतः आर्थिक अभावों का कारण, इस पारस्परिक कलह और उसकी मुकदमेबाजी में परिणति हो पाया। इसका निदान सामाजिक सद्भाव की दिशा में सोच को विकसित करने में था। इसका साधन था- पंचायती व्यवस्था। 'जेह की लाठी', 'ओह की भैंस', 'बंटवारा' जैसे रूपक जागरण की इस दिशा को खोलते हैं। मिश्र जी ऐसे सजग रचनाकार हैं, जो यथार्थ की रोशनी में वंचितों की यातना की पड़ताल तो करते हैं। लेकिन उसे नग्नता और दायित्व हीनता के लिए निरंकुश नहीं छोड़ देते। वे उसे सज्जनता, सच्चरिता तथा सामाजिक दायित्व-बोध से अनुशासित किए रहते हैं। वे मद्यपान, द्युतकीड़ा, दहेज ऐसे अपराध को परिहरणीय बुराइयाँ मानते हैं। इस बात को 'नया जीवन', 'जहाँ देखो वहाँ जुवा', 'समधी जी', 'सौदागर' जैसे धनेरूपक प्रमाणित करते हैं।

गंगाप्रसाद मिश्र के कुछ प्रमुख ध्वनि-नाटक या रेडियो रूपक इस प्रकार हैं-

- फूहड़
- चाँद भला सब तारन से
- पाहुन
- अट्ठारह सौ सत्तावन
- आजादी के परवाने
- लक्ष्मीबाई

- ★ ओंस पर जलते पाँव
- ★ तात्या टोपे
- ★ दो ध्रुवों के बीच

(५.) यात्रा साहित्य

पं. गंगाप्रसाद मिश्र ने निम्नलिखित यात्रा वृत्त लिखे हैं :

- ★ कश्मीर यात्रा
- ★ मेरी दार्जिलिंग यात्रा
- ★ मेरी दक्षिण यात्रा १
- ★ मेरी दक्षिण यात्रा २
- ★ मेरी नेपाल यात्रा

(६.) समीक्षा

मिश्रजी की कुछ प्रमुख समीक्षाएँ इस प्रकार है :

- ★ उपेंद्रनाथ अश्क के दो कहानी संग्रह
- ★ हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन
- ★ एक इंच मुस्कान
- ★ 'दो बाँके' कहानी संग्रह
- ★ आधुनिक हिंदी कहानी
- ★ अमृत और विष
- ★ चित्र फलक
- ★ बोल्गा से गंगा

(७.) लेख

गंगाप्रसाद मिश्र के प्रमुख लेख इस प्रकार हैं-

- ★ साहित्य पर एक लेख
- ★ भाषा/पत्रकारिता विषयक लेख
- ★ शिक्षा विषयक लेख
- ★ मूल्यपरक/नीतिपरक लेख
- ★ श्रद्धेय व्यक्ति परक लेख
- ★ समाजपरक लेख
- ★ पर्यटन/प्रकृति/विषयक लेख
- ★ अवधी विषयक लेख

१.४ साहित्य सर्जन की प्रेरणा स्रोत

पंडित गंगाप्रसाद मिश्र की रुचि बचपन से ही साहित्य की ओर रही। सृजनात्मक शक्ति सब में होती है। साहित्य सर्जन अंतः प्रेरणा से होता है। इतना ही नहीं वातावरण एवं परिवेश का प्रभाव भी मन पर पड़ता है। साथ ही प्रत्येक साहित्यकार की रचना प्रक्रिया के पीछे किसी न किसी की प्रेरणा उसे साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करती है।

मिश्रजी को बचपन से ही साहित्य की ओर अधिक लगाव था। उनके घर में भी थोड़ा बहुत साहित्यिक वातावरण था। उनको बचपन से ही कहानी सुनने का शौक था। मिश्रजी के अंदर का शौक रोग की सीमा तक पहुँचा हुआ था। इसको लेकर मिश्रजी को दो-चार बार माँ से अच्छी तरह मार भी पड़ी थी। बालक गंगाप्रसाद का कान्यकुब्ज कॉलेज की चौथी कक्षा में प्रवेश हुआ और वहाँ के प्रधानाचार्य पंडित बालकृष्ण पांडे इनके तथा अन्य छात्रों के प्रेरणा स्रोत बने। नगर के अतिरिक्त बाहर से आने वाले साहित्यिकों और नेताओं को बुलाकर भी वे उनके भाषण करवाते रहते थे। अब तक विद्यार्थी गंगाप्रसाद का कहानी सुनने का शौक, कहानी पढ़ने के रोग में पारिणत हो चुका था। पाँचवी-छठी कक्षा में अंग्रेजी की अपनी पाठ्य पुस्तक 'अलादीन एंड

हिज वंडरफुल लैंप' का (जो लगभग चालीस पृष्ठों की थी) गंगाप्रसाद ने हिंदी में अनुवाद करवाया। "कुछ समय पश्चात मिश्रजी ने सिंड्रोला की कथा के आधार पर एक भारतीय पृष्ठभूमि में कथा लिखी। इस तरह के सृजनात्मक लेखन के अभ्यास के क्रम में ही अध्ययनशील गंगाप्रसाद ने पहली मौलिक कहानी 'आडंबर' सन् १९३४ में लिखी। वह कान्यकुब्ज कॉलेज की मैगजीन में प्रकाशित हुई। उन्हीं दिनों 'कान्यकुब्ज' मासिक पत्रिका का प्रकाशन लखनऊ से होने लगा। इस पत्रिका में गंगाप्रसाद मिश्र की प्रकाशित पहली कहानी 'मिलन' थी। इसके बाद तो कहानी लेखन का सिलसिला ही शुरू हो गया। पंडित रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति' उसके प्रधान संपादक थे, दूसरे संपादक थे पंडित श्रीधर मिश्र। यह दोनों ही गंगाप्रसाद मिश्र को कहानी लिखने के लिए प्रेरित करते रहते थे। मिश्रजी कहानियाँ बराबर लिखते रहें। गंगाप्रसाद मिश्र की उस समय की कहानियाँ सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करने वाली अथवा प्रेम कहानियाँ थीं। सन् १९३७ ई. में दहेज प्रथा के विरुद्ध लिखी कहानी 'महराजिन' लखनऊ विश्वविद्यालय कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुई।

युवक गंगाप्रसाद मिश्र ने सन् १९३५ में हाईस्कूल और १९३७ ई. में इण्टर की परीक्षा पास की थी और इस बीच निराला जी लखनऊ आ चुके थे। उन्होंने 'सुधा' में संपादक का कार्य आरंभ कर दिया था। डॉ० रामविलास शर्मा लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम०ए० करके रिसर्च कर रहे थे। मिश्रजी का अक्सर उनके साथ उठाना-बैठना होता। तब तक मिश्रजी इनके साथ साहित्य चर्चा करने लायक हुए न थे। फिर भी यह दोनों के यहाँ जाते थे, बैठते थे। इन लोगों में जो साहित्य चर्चा होती थी, उसे सुनते थे। मिश्रजी की कहानियों के संबंध में ये लोग सुझाव देते थे।

बी.ए. में आते-आते मिश्रजी की कहानियाँ 'सुधा', 'माधुरी', 'चाँद' इत्यादि उस समय की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थी तथा बी.ए. की पढ़ाई के वे दिन अजीब संघर्ष के दिन थे। मिश्रजी को स्वयं ही अपने भोजन का प्रबन्ध और विश्वविद्यालय की फीस का भी प्रबन्ध करना पड़ रहा था। सुबह-शाम ट्यूशन करते थे और दिन में पढ़ने जाते थे। कहानी लेखन का जैसे ज्वार आया हुआ था। कोई कथानक मिश्रजी के मन में उतर आता तो जब तक उसे लिख न डालते चैन न मिलता। दिन में फुर्सत न मिलती थी, पढ़ने बैठते तो नींद आती, पर कहानी लिखने बैठते तो नींद पास न फटकती। रात में अक्सर देर तक लिखते रहते। कुछ बड़ी-बड़ी कहानियों को लिखने में पूरी-पूरी रात गुजर जाती थी।

सन् १९४६ में लखनऊ के 'रिफाह-ए-आम क्लब' में पहला प्रगतिशील लेखक सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचंद ने की। उस अवसर पर हुए भाषणों के मर्म को हम नवयुवक चाहे पूर्णतया न समझ पाए हों, लेकिन सम्मेलन ने हमें साहित्य के संबंध में नए तरीके से सोचने को विवश किया था, एक नई दिशा दी थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने साम्यवाद तथा समाजवाद का गंभीर अध्ययन किया था। उनके निकट संपर्क में भी आकार मैंने कहानियाँ 'सुधा', 'माधुरी', 'चाँद' इत्यादि इसके बारे में बहुत कुछ सीखा।"[२०] सन् १९३९ ई. में मिश्रजी ने बी.ए. किया और १९४० में आनर्स। स्वालंबी छात्र होने पर जो कठिनाई होती थी, वे धीरे-धीरे कम हो गई थी। पैसा कमाना मिश्रजी को आ गया था। ट्यूशन कराते थे, रेडियो के लिए लिखकर कुछ कमाते थे और कभी-कभी दस-पाँच रुपए कहानियों के भी पा जाते थे।

एम.ए. फाइनल में मिश्रजी ने 'हिंदी कहानी साहित्य' पर शोध प्रबंध लिखने का निर्णय ले लिया पर इन्हीं दिनों मिश्रजी को एक उपन्यास लिखने का जुनून सिर पर सवार हो गया और उसको लिखना प्रारंभ कर दिया। इस उपन्यास का नाम 'विराग' था और यह मिश्रजी का पहला उपन्यास था। इसमें राष्ट्रीय आंदोलन और मजदूर आंदोलन की पृष्ठभूमि में एक युवक की भूमिका का चित्रण था, जिसे अपने कार्य की प्रेरणा मोहल्ले की एक विधवा (विराग) से मिलती है। १९४० से १९४१ का वर्ष चल रहा था। मिश्रजी इस वर्ष लखनऊ के कान्यकुब्ज वोकेशनल हाईस्कूल में पार्ट टाइम हिंदी-अध्यापक हो गए थे। यूनिवर्सिटी में फाइनल की कक्षाएं पढ़ने जाते थे। इन सब में बड़ी भाग-दौड़ पड़ती थी। अनबन हो जाने के कारण सन् १९३७ से ही घर में भोजन न करते थे, होटल में करते थे। जो उपन्यास लिख रहे थे, उसने इतना परेशान किया कि उसे सब काम छोड़कर पूरा करना पड़ा। इस प्रकार मिश्रजी का लेखन कार्य गतिशील था। जुलाई १९४२ में गंगाप्रसाद मिश्र सरकारी सेवा में आए। हिंदी शिक्षक के रूप में उनकी पदस्थापना राजकीय इंटर कॉलेज हरदोई में हुई जहाँ वह जून १९४४ तक अध्यापन के साथ कहानियाँ आदि भी लिखते रहे। जून १९४४ में मिश्रजी का स्थानांतरण राजकीय हुसैनाबाद कॉलेज लखनऊ में हो गया, यहाँ भी वह अध्यापन के साथ कहानियाँ और उपन्यास लिखने में प्रवृत्त रहे। उपन्यास का नाम था 'पथ के कांटे' जो कि ट्यूशन पढाने वाले एक अध्यापक के जीवन पर केंद्रित था। इसके कुछ अंश पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे किंतु; दुर्भाग्य यह कि उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा (झाँसी) के प्रकाशन, जो वर्मा जी के पुत्र देखते थे, वर्माजी के प्रकाशन से प्रकाशित करने के लिए लिया और वह उनसे खो गया इससे गंगाप्रसाद मिश्रजी के

लेखक को बड़ा आघात लगा और वह लंबे समय तक कोई उपन्यास लिखने का मन नहीं बना सके, अगर लिखना भी चाहा तो वह बहुत धीमी गति से लंबे समय में लिखा गया।

'पथ के काँटे' उपन्यास के प्रसंग में गंगाप्रसाद मिश्र जनवरी १९४६ से जून १९४९ तक वह झाँसी राजकीय इंटर कॉलेज में रहें। जुलाई १९४९ में एक बार पुनः वह स्थानांतरित होकर गवर्नमेंट जुबली इंटर कॉलेज लखनऊ में हिंदी अध्यापक के पथ पर आ गए। यहाँ के प्रिंसिपल श्रीधर सिंह ने मिश्रजी पर भरोसा करते हुए उन्हें कई तरह की व्यवस्थापकीय जिम्मेदारियाँ सौंपी इसका लाभ यह हुआ कि वे अध्यापन के साथ ही विद्यालय के विभिन्न स्तरीय प्रबंधन का भी मिश्रजी को अच्छे अनुभव हुए। इस दौरान उनकी दूसरी बेटी शशि का लगभग १० वर्ष की आयु में निधन हो गया। ये भी उनके परिवार के लिए बड़ा आघात था। इस बेटी को लेकर उन्होंने शशि शीर्षक से एक कहानी लिखी इसी समय संगीत विषयक उनकी बहुत प्रसिद्ध कहानी 'खानदानी पीलू' भी लिखी गई और अनेक तरह के स्फूट-लेखन के साथ रेडियो के लिए भी नाटक वार्ताएँ, पुस्तक समीक्षाएँ आदि भी लिखी। सन् १८५७ नामक लगभग ७० मिनट का ध्वनि रूपक भी उन्होंने इसी समय लिखा जो १८५७ की शताब्दी पर होने से बहुचर्चित हुआ और आकाशवाणी के कई केंद्रों से इसका प्रसारण हुआ। नवंबर १९५५ में गंगाप्रसाद मिश्र को विभाग ने राजकीय दीक्षा विद्यालय बलरामपुर की दुर्व्यवस्थाओं को संभालने की चुनौतियों के साथ प्रधानाध्यापक पद पर भेजा। यहाँ केवल उन्होंने आठ महीने रहकर विद्यालय की स्थिति अच्छी कर दी तो उन्हें अगस्त १९५६ में राजकीय हमीद हाईस्कूल रामपुर का प्रधानाध्यापक बनाकर भेजा गया। वहाँ भी विद्यालय में छात्रों की अनुशासन हीनताओं का जबरदस्त बोलबाला था। इस दुरूह कार्य को भी लगभग १४-१५ महीने वहाँ रहकर मिश्रजी ने विद्यालय को अनुशासनबद्ध संस्था बना दिया। नवंबर १९५७ में राजकीय इंटर कॉलेज बस्ती के प्रिंसिपल पद पर मिश्रजी की नियुक्ति हुई यहाँ वह जून-जुलाई १९६२ तक रहे। यहाँ उनका लेखन और साहित्यिक-सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में संलग्नता का बहुत अच्छा कालखण्ड गुजरा। उसी दौर में उन्होंने वहाँ के चर्चित व वयोवृद्धि कवि पंडित बलरामप्रसाद मिश्र 'द्विजेश' से अच्छा परिचय हुआ यद्यपि द्विजेशजी दुर्घटना ग्रस्त हो जाने से जल्दी ही दिवंगत हो गए। उनकी स्मृति में मिश्रजी के मार्गदर्शन में द्विजेश परिषद की स्थापन हुई, "इस संस्था ने बहुत अच्छे-अच्छे (साहित्यिक-सांस्कृतिक) आयोजन किए और संगीत जगत के अनेक महान विभूतियों ने इसके तत्वावधान में पधारकर रस वर्षा की।"[21]

इस क्रम में मिश्रजी ने लिखा है- "लखनऊ में एक उपन्यास के दो-तीन परिच्छेद मैने लिखे थे जिसमें मध्यमवर्ग की परिस्थितियों का चित्रण था। लखनऊ के गहमा-गहमी में यह आगे न बढ़ सका था। बस्ती में....मैने इस उपन्यास को आगे बढ़ाया और यहीं यह पूरा हुआ। लगभग ४५० पृष्ठों का यह उपन्यास 'तस्वीरें और साये' था। श्रीमती जी ने मेरी पांडुलिपि से इसकी पूरी प्रेस कॉपी तैयार की। 'ट्यूटर' (पथ के काँटे) उपन्यास की पांडुलिपि खो जाने के कारण हम लोग बिना प्रतिलिपि किए अब उपन्यास बाहर भेजने का खतरा उठाने को तैयार न थे। इतने बड़े उपन्यास को टाइप करा सकना अपने बस में न था। साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद से यह उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की यशपालजी, आचार्य बलदेव प्रसाद मिश्र, प्रकाशचंद्र गुप्त, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने बहुत प्रसंशा की। इस उपन्यास के संबंध में लिखे गए इन महानुभावों के पत्र और समीक्षाएँ मेरे लिए बहुत प्रेरणादयी सिद्ध हुए। बस्ती में कहानियाँ भी मैने काफी लिखी।"[22]

सन् १८६२ के अगस्त में पंडित गंगाप्रसाद मिश्र की नियुक्ति राजकीय इंटर कॉलेज सुलतानपुर के प्रधानाचार्य के पद पर हो गई, जहाँ के लिए मिश्रजी को बस्ती से विदा होना बहुत भारी मन से हो पाया। सुल्तानपुर के सिलसिले में मिश्रजी ने लिखा है- सुलतानपुर में तीन वर्ष रहा, वहाँ मेरे पहुँचने के कुछ ही समय पहले पंडित रामनरेश त्रिपाठी का स्वर्गवास हो गया। मैने उनकी जयंती मनाने का निश्चय किया, इसमें सुल्तानपुर के साहित्य-प्रेमी नागरिकों ने बहुत सहयोग दिया। तीनों वर्ष बालकृष्ण राव, श्रीमती महादेवी वर्मा, गोपी कृष्ण गोपेश, ओंकार शरद, डॉक्टर देवर्षि सनाढ्य के अतिरिक्त बहुत से साहित्यिक और कवि इन जयंतियों में आए। यहीं मेरा परिचय प्रो. राजनाथ पाण्डेय से हुआ जो उन दिनों त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमांडू में हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने मुझे नेपाल यात्रा का निमंत्रण दिया। मैं....काठमांडू गया....नेपाल के अनेक दर्शनीय स्थलों और मंदिरों का दर्शन किया। तीन सप्ताह वहाँ रहा। उन्हीं दिनों मैने अपना उपन्यास 'सोनारावणी के पार' लिखना आरंभ किया और काफी भाग वहीं लिख डाला। बाद में सुलतानपुर में ही इसे पूरा कर लिया। सुलतानपुर में मैने अनेक कहानियों के साथ अपनी प्रसिद्ध कहानी 'दूधपूत' लिखी, जो 'माध्यम' पत्रिका में प्रकाशित हुई।"[23]

जुलाई १९६५ से जून १९७० तक गंगाप्रसाद मिश्र, राजकीय इंटर कॉलेज, फैजाबाद के प्रधानाचार्य रहे। यहाँ उन्होंने अपने राजकीय सेवाकाल में किसी विद्यालय का सर्वरूपेण बहुत अच्छा और परिश्रम से संचालन किया जिसके फलस्वरूप परीक्षाफल, खेलकूद, अनुशासन,

साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों का उच्चस्तरीय आयोजन ऐसे होते रहे कि उनके विद्यालय को बहुत लोकप्रियता मिली जिससे एक प्रकार से वह क्षेत्र का सांस्कृतिक केंद्र भी बन गया। अनेक प्रसिद्ध लेखक व साहित्यकार यहाँ के आयोजनों में पधारे। यहाँ उन्होंने कोई उपन्यास तो नहीं पर कई कहानियाँ लिखी और माध्यम के संपादक बालकृष्ण राव के आग्रह पर अनेक पुस्तकों की समीक्षाएँ और आलोचनाएँ लिखी और उनकी बड़ी कहानी 'पत्थर की लकीर' यहीं लिखी गई। जुलाई १९७० में पदोन्नति होकर गंगाप्रसाद मिश्र रायबरेली के जिला विद्यालय निरीक्षक के पद पर नियुक्त हुए। अब तक के अध्यापकीय जीवन से अलग एक लेखक के लिए यह प्रशासनिक प्रकृति का कार्य बिल्कुल नया था। यहीं से उन्हें अपने शिक्षा विभाग और विद्यालयों में भ्रष्टाचार्य के घुन लगे होने का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ पर चूँकि वे ईमानदार अधिकारी थे इसलिए बहुत बार परिस्थितियाँ विचलित करने वाली और चुनौतीपूर्ण होती थी। फलस्वरूप उनके उपन्यास 'जहर चाँद का' लेखन शुरू हुआ। चाँद भला सब तारों से, नवासक्षरों उपयोगी उपन्यास भी उन्होंने यहीं लिखा।

अक्तूबर १९७१ से सेवानिवृत्ति प्रयन्त गंगाप्रसाद मिश्र जिला विद्यालय निरीक्षक गोंडा के पद पर रहे। गोंडा हिंदी उर्दू के साहित्यिक वातावरण के लिहाज से बहुत समृद्ध जिला रहा है। यहाँ भी स्थानीय साहित्यकारों से गहरे जुड़ाव के साथ उन्होंने विभिन्न साहित्यिक-सांस्कृतिक गंगा-जमुनी आयोजन किए। यहीं प्रेमचंद युगीन प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य लेखक श्री जी. पी. श्रीवास्तव से उनका निकट संपर्क हुआ। मिश्रजी के नए कहानी संग्रह 'दूधपूत' का लोकार्पण जी.पी. श्रीवास्तव जी ने किया और बलरामपुर में 'कहानी की शाम' से कहानियों के पाठ और उन पर चर्चा का बहुत ही उत्कृष्ट कार्यक्रम मिश्रजी के प्रयत्न से बलरामपुर में हुआ। इसमें के.पी. सक्सेना, शत्रुघ्न लाल, चंद्रकिरण सोनरेक्शा, कमालपाशा आदि के साथ गंगाप्रसाद मिश्र ने भी इसमें कहानी पाठ किया। आयोजन हास्य-व्यंग्य सम्राट श्री जी. पी. श्रीवास्तव की अध्यक्षता में हुआ था। रायबरेली में शुरू किया गया उपन्यास मिश्रजी ने यहाँ आगे बढ़कर उन्होंने पूरा किया। फरवरी १९७३ में द्विजेश परिषद बस्ती ने कवि सम्मेलन, कहानी सम्मेलन और संगीत सम्मेलन के साथ गंगाप्रसाद मिश्रजी के अभिनंदन का भी भव्य आयोजन किया।

इस क्रम में पं. गंगाप्रसाद मिश्र ने लिखा है- "२८ जनवरी १९७५ को मैने राजकीय सेवा से अवकाश ग्रहण किया और लखनऊ आ गया। नवंबर १९५५ में छूटा लखनऊ लगभग २० वर्ष बाद मुझे मिला। कुछ ही महीनों बाद मेरे नये कहानी संग्रह 'दूधपूत' को उत्तर प्रदेश शासन ने

पुरस्कृत किया। अपने विगत जीवन की ओर मुड़कर देखता हूँ तो बराबर अपना वह प्रयास याद आता है, जो मैने सभी परिस्थितियों में साहित्य-सृजन के लिए जारी रखा है। मै छोटे-छोटे जनपदों में रहा जहाँ न किसी पत्रिका की बात थी और ना ही प्रकाशन की। कुछ ऐसे लंबे अंतराल भी आए जब मेरी कोई पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। साहित्यिकों एवं उनके गुटों और प्रकाशन संस्थानों से मैं कोई लाभदायक संपर्क न बना सका। लेकिन लिखना मेरा कभी न रुका। बड़े पत्र-पत्रिकाओं में रचना प्रकाशित न हो सकी तो मैने इसकी चिंता न की। स्थानीय पत्र -पत्रिकाओं में ही लिखकर सीमित क्षेत्र में अलख जगाता रहा जहाँ भी रहा, मैने एक साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण तैयार करने का प्रयास किया इसका मुझे संतोष है।"[24]

८ फरवरी १९७७ को दिनांकित अपने लेख 'मैं और मेरा कृतित्व' के अंत में गंगाप्रसाद मिश्र ने लिखा है ४२ वर्ष साहित्य की सेवा करते हुए मुझे हो गए। लगभग २०० कहानियाँ, ८ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, सात उपन्यास प्रकाशित हुए। न जाने कितने रेडियो नाटक, समीक्षाएँ तथा निबंध लिखे।....मैने धन को अपने जीवन में साहित्य-सृजन से अधिक महत्व दिया होता तो मुझे कोई गलत काम करने की आवश्यकता होती। मेरी एक पाठ्य पुस्तक 'गद्य पारिजात' से मुझे इतना लाभ हुआ कि मैं बड़ी आसानी से ने पाठ्य-पुस्तकें अथवा सहायक पाठ्य-पुस्तकें लिखकर मैं अच्छा-खासा कमा सकता था, लेकिन मैने यह न किया।....मन के अंदर यह दृढ़ इच्छा अभी बाकी है कि जब तक जीवित रहूँ लिखता रहूँ। प्रेमचन्द जी के शब्द मुझे याद है, जिसको ४० वर्ष पूर्व उन्होंने मुझसे कहे थे। बराबर लिखते रहना। एक आदमी न जाने कितना लिखता है तब उसमें कहीं कोई ऐसी चीज बन पड़ती है, जो देश और काल की सीमा को लांघकर जीवित रहती है। उसी चीज की तलाश में मेरी यह कथा-यात्रा जारी है और निरंतर जारी रहेगी।[25]

श्री बन्धु कुशावर्ती, जो हाईस्कूल की पढ़ाई के दौरान गंगाप्रसाद मिश्र के प्रधानाधापकत्व की अवधि में राजकीय इंटर कॉलेज, सुलतानपुर के छात्र रहे तथा उसके बाद १९६९ से उनके जीवन पर्यंत बहुत निकट रहें हैं, उन्होंने एक साक्षात्कार में बताया- "पं० गंगाप्रसाद मिश्र जब हमारे विद्यालय के प्रधानाचार्य थे तब हमलोग नही जानते थे कि वह अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा और यशपाल जैसे हिंदी के मूर्धन्य कथाकारों के साथ सतत लेखनरत रहे। हिंदी के महत्वपूर्ण कहानीकार और उपन्यासकार हैं। मेरी निकटता उनसे १९६९ की फरवरी या मार्च में हुई तब वे राजकीय इंटर कॉलेज, फैजाबाद के प्राचार्य थे। मै राजकीय सेवा में आने के

बाद फरवरी १९७४ में लखनऊ आ गाया। इसके एक वर्ष बाद फरवरी १९७५ में गंगाप्रसाद मिश्र सेवानिवृत्त होकर जब लखनऊ आए तब मुझे उनका सानिध्य प्रायः मिलने लगा। वह १९९३ तक लखनऊ रहें हैं, इन १८ वर्षों में जितना बहुविधि लेखन उन्होंने किया वह अधिकांशतः छपता रहा है। मुझे लगता है ये उनके जीवनभर में किए गए लेखन का लगभग एक तिहाई है। उन्होंने बेटे को कोई नौकरी न मिलने से एक छोटा प्रेस लगाकर चलाने के लिए उसे सौंप दिया था। उसके चलने से मिश्रजी के बेटे के हाथ में अपना एक काम तो आ गया पर बेटे के विवाह के बाद उसकी पत्नी को दिनभर हाथ काले करने वाला प्रेस का काम बहुत नागवार गुजरता था। इससे मिश्रजी का एक मात्र बेटा और उनकी बहू बेहतर काम के लिए दिल्ली चले गए और प्रेस बेच दिया गया। इससे पंडित गंगाप्रसाद मिश्र के लेखन में तो कोई व्यवधान तो नही आया, इसलिए वह अपने को लेखन में पूरी तरह व्यस्त रखते रहे। परन्तु १९९० के आस-पास जब उन्हें पार्किंसन रोग हुआ तो उनका चलना-फिरना, उठना-बैठना, लिखना-पढ़ना यहाँ तक कि खाना-पीना भी बहुत प्रभावित हुआ। उनका इलाज भी बहुत खर्चीला था, वह चाहते थे कि बेटा और बहू लखनऊ आ जाएँ और बेटा बहू चाहते थे कि उनके माता-पिता दिल्ली चले आएँ पर गंगाप्रसाद मिश्र को लखनऊ छोड़ना गवारा नहीं था क्योंकि; ७-८ साल की उम्र में खंडवा से लखनऊ आकर गंगाप्रसाद मिश्र ने जिस लखनऊ में रहते हुए अपनी पढ़ाई लिखाई की, जीवन के संघर्षों से सामना किया और प्रेमचंद के गहरे पाठक होने के नाते प्रेमचंद की परंपरा में अपनी कहानियाँ लिखनी शुरू की तथा यहीं उन्हें न केवल प्रेमचंद से सबसे पहली मुलाकात हुई बल्कि; प्रेमचंद जब प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन (अप्रैल १९३६) की अध्यक्षता करने आए तो प्रेमचंद ने ही गंगाप्रसाद मिश्र को प्रगतिशील लेखक संघ का सदस्य भी बनाया था। इससे प्रेमचंद की परंपरा में कहानी लेखन की एक बड़ी जिम्मेदारी गंगाप्रसाद मिश्र पूरी गंभीरता से महसूस करने लगे थे। इसलिए अपने जीवन के अंतिम दिनों (१९३६ के आस-पास) की बीमारी के हालत में लखनऊ आए तो उन्होंने ये जाना कि गंगाप्रसाद मिश्र कहानियाँ भी लिखते हैं, तब प्रेमचंद ने गंगाप्रसाद मिश्र से मंगाकर और उन्हीं से उनकी कहानी 'महराजिन' सुनी थी और कहा था- गंगाप्रसाद तुममें प्रतिभा है, तुम हमेशा लिखते रहना, लिखना कभी मत छोड़ना। प्रेमचंद को गंगाप्रसाद मिश्र अपना साहित्यिक पिता मानते थे इसलिए जब ८ अक्तूबर १९३६ को उनके देहांत की जानकारी गंगाप्रसाद मिश्र को मिली तो एक साहित्यिक पिता के नाते गंगाप्रसाद मिश्र ने अपने जीवन में पिता की दुर्भाग्यपूर्ण अनुपस्थिति जीवन में दूसरी बार महसूस की।

जैसा कि ऊपर मैने उल्लेख किया है कि यह गंगाप्रसाद मिश्र का लेखक जिस लखनऊ में जन्मा और विकसित हुआ, उसे वह अंतिम क्षण तक नहीं छोड़ना चाहते थे किंतु; बेटे की ओर से अपनी सहधर्मिणी के इस दबाव से 'हम तुम अकेले यहाँ है, पार्किन्सन से तुम्हारी हालत इतना खराब है, ऐसे में हम-तुम यहाँ रहने के बजाय बेटे के पास चलें, हमारे लिए यही सबसे अच्छा है।' - उन्हें अंततः बेमन से अपना मकान बेचना तथा मजबूरन लखनऊ छोड़कर दिल्ली जाना पड़ा इसके बावजूद उस समय जबकि वह हाथ से लिख नहीं पाते थे अपना आखिरी उपन्यास 'रांग साइड' उन्होंने बोलकर लिखवाया। सबसे छोटी बेटी और दामाद के पास चंडीगढ़ में इस तरह उन्होंने अपना अंतिम उपन्यास 'रांग साइड' पूरा किया ।

लखनऊ छोड़कर जाने के बाद वे अपनी तीसरी बेटी शोभा शुक्ला व दामाद आनन्द शुक्ल के पास लखनऊ आते-जाते रहे क्योंकि; दिल्ली में रहकर वे लखनऊ के लिए बराबर बेचैन रहते थे। इसके बाद जब वह लखनऊ आए तो मुलाकात होने पर बोले- 'कि दिल्ली जाना उतना नहीं अखरता है, जितना लखनऊ से दिल्ली आने के बाद अखरता है। लखनऊ से वापस जाना मुझे बेचैन करता है। इस लखनऊ ने मुझे लेखक बनाया। नागरजी, भगवती बाबू और यशपाल जी के साथ हिंदी के महत्वपूर्ण कथाकार के रूप में मुझे प्रतिष्ठा मिली। मै लखनऊ बिल्कुल नहीं छोड़ना चाहता पर अब यहाँ से जाऊँगा तो शायद लौटकर आना न हो।' उनका यह कथन मेरे लिए बहुत कष्टप्रद था। अतः हम कुछ लोगों ने मिलकर उनके लिए लखनऊ से उनकी विदाई का एक कार्यक्रम फरवरी १९९३ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान में आयोजित किया। तब उन्होंने अपने जीवन के ७५ वर्ष पूरे कर लिए थे। इसकी अध्यक्षता नागरजी के सहपाठी रहे मूर्धन्य पत्रकार और गंगाप्रसाद मिश्रजी के समकालीन लेखक श्री ज्ञानचंद जैन ने की थी। इसमें गंगाप्रसाद मिश्र ने सारे लोगों को सुनने के बाद अभिभूत होकर अत्यंत मार्मिक स्वर में कहा था- 'लिखने को बहुत कुछ है, लिखने की बहुत इच्छा है, कितना लिख पाऊँगा- कह नहीं सकता। आपलोगों ने इतने स्नेह से मुझे याद किया, इसके लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, कृपया भूलिएगा मत।' कहते गंगाप्रसाद मिश्र विनती भरे अंदाज में अपने वेदना-सिक्त वाक्य बोलते-बोलते ठहर गए थे।

१.५ स्वर्गवास

जीवन की सांध्य-बेला में पार्किंसन बीमारी मिश्रजी को धीरे-धीरे तोड़ती जा रही थी। अपने

इलाज की खातिर विवश होकर मिश्रजी को अपना मकान बेचना पड़ा था। वर्ष १९९३ में उन्होंने लखनऊ छोड़कर अपने बेटे के पास दिल्ली रहने का उन्हें अप्रीतिकर निर्णय लेना पड़ा। हिंदी भवन हजरतगंज लखनऊ में साहित्य प्रेमियों ने उन्हें अत्यंत भावभीनी विदाई दी। जिसमें रुँधे कण्ठ से उन्होंने अपने वक्तव्य का समापन 'बाबुल मोरा नैहर छूटों जाय' जैसा करते हुए कहा था : 'मैंने बहुत विवशता में लखनऊ छोड़ा है भूलिएगा नहीं!' यह सुनकर यहाँ बैठे सब श्रोताओं की आँखे भीग गई थी। इसके बाद पंडित गंगाप्रसाद मिश्र कभी बेटे के पास और कभी एक बेटी के पास दिल्ली में तो कभी बड़ी बेटी-दामाद के पास वड़ोदरा और कभी सबसे छोटी बेटी व दामाद के पास चंडीगढ़ में रहते थे। अब पारकिंसन बीमारी के कारण वह हाथ से ना लिखकर नागरजी की तरह बोलकर लिखवाते थे। अपना अंतिम उपन्यास 'रांग साइड' मिश्रजी ने बोलकर ही लिखवाया है।

मिश्रजी को सदा अच्छा भोजन खाने और खिलाने का शौक था। एक समय था जब शायद ही कोई हफ्ता जाता था, जब मिश्रजी के यहाँ किसी न किसी मेहमान को खाने पर आमंत्रित न किया गया हो। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, रमानाथ अवस्थी, डॉ. सुरेश अवस्थी आदि कोई न कोई साहित्यिक हस्तियों का आना-जाना घर पर लगा रहता था।

वर्ष १९९१ से १९९४ दिसंबर तक पार्किंसन रोग ने उन्हें इतना तोड़कर रख दिया था कि न सिर्फ उन्हें बोलने में परेशानी होती थी, बल्कि खाने का कौर मुँह में लेकर चबाने में मुँह घूम जाता था और वह ठीक से खा नहीं पाते थे। २४ दिसंबर १९९४ ई. को गंगाप्रसाद मिश्र ने दिल्ली में बेटे राजीव के यहाँ, इस संसार को छोड़कर स्वर्गवासी हो गए।"[26]

१.६ आधार ग्रन्थ

गंगाप्रसाद मिश्र के उपन्यास

१. विराग (१९४१)

२. संघर्षों के बीच (१९४४)

३. महिमा (१९४५)

४. तस्वीरें और साये (१९६४)

५. सोनारावणी के पार (१९६८)

६. जहर चाँद का (१९७६)

७. मुस्कान है कहाँ (१९८२)

८. रांग साइड (१९९२)

गंगाप्रसाद मिश्र के कहानी संग्रह

१. सरोद की गत (१९४१)

२. आदर्श और यथार्थ (१९४४)

३. नया खून (१९४४)

४. नई राहें (१९४७)

५. काँटो का ताज (१९५०)

६. बाँहों के घेरे गर्दन की मजबूरियाँ (१९६२)

७. दूध-पूत (१९७३)

८. मेरी प्रिय कहानियाँ (१९७८)

१.७ संदर्भ

१. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग- १, संपादक- डॉ. इन्दु शुक्ला, पृ. १९

२. वही, पृ. २३

३. वही, पृ. २४

४. वही, पृ. २५

५. वही, पृ. २१

६. वही, पृ. २३

७. वही, पृ. २४,२५

८. संघर्षों के बीच (गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग- १), संपादक- इंदु शुक्ला, पृ. १७२

९. वही, पृ. १७२

१०. वही, पृ. १७४

११. वहीं, पृ. १७४

१२. उत्तर प्रदेश पत्रिका, संपादक- कुमकुम शर्मा, अंक- १९, सितंबर-अक्तूबर २०१६, पृ. २३

१३. रामविलास शर्मा, हंस (जुलाई १९४२ में प्रकाशित)

१४. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग ३, संपादक- इंदु शुक्ला, पृ. ३१

१५. वही, पृ. ४१,४२

१६. वही, पृ. ३८,३९,४०

१७. वही, पृ. ५३,५४

१८. वही, पृ. ६५

१९. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग ३, संपादक- इंदु शुक्ला, पृ. १६६,१६७,१७१,१७५

२०. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग १, संपादक- इंदु शुक्ला, पृ. १५८

२१. वही, पृ. १६५

२२. वही, पृ. १६६

२३. वही, पृ. १६६,१६७

२४. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग ३, संपादक इंदु शुक्ला, पृ. १६९

२५. वही, पृ. १७०

२६. उत्तर प्रदेश पत्रिका, संपादक- कुमकुम शर्मा, अंक- १९, सितंबर-अक्तूबर २०१६, पृ. २४